# षष्ठम अध्याय

## स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प

'नई कहानी' आन्दोलन के बाद हिंदी साहित्य में और खास तौर से कथा साहित्य की भाषा में जो परिवर्तन दिखाई देता है वह है आँचलिक एवं स्थानीय भाषा का हिंदी-उर्दू के साथ मिश्रित प्रयोग। विशेष तौर पर साहित्य में जब मुस्लिम उपन्यासकारों का हस्तक्षेप बढ़ता है। इन उपन्यासकारों के यहाँ भाषा के स्थानीय रूप का इस्तेमाल हिंदी कथा साहित्य को नई उर्जा प्रदान करने के साथ-साथ उसमें ताजगी लाने का भी कार्य करता है। 'नई कहानी' आन्दोलन के पहले भाषा का परिमार्जित एवं खड़ी बोली का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु आजादी के बाद के उपन्यासों में खासकर रेणु के 'मैला आँचल' से भाषा का बदलता हुआ स्वरूप दिखाई पड़ने लगता है। राही मासूम रज़ा, शानी एवं बदीउज्जमाँ के कथा साहित्य की भाषा पर भी गौर करने से सहज ही मालूम पड़ता है कि उनकी भाषा में कोई बनावटीपन न होकर स्थान विशेष की भाषा एवं बोलियों का सहज सरल एवं जीवन्तता के साथ प्रयोग हुआ है। इन उपन्यासों का तकनीकी पक्ष बेहद उम्दा और नवीनता लिये हुए है। शिल्प की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास अपनी पुरानी लीक से हटकर नए प्रयोग के साथ दिखाई पड़ता है।

### 6.1 भाषा

भाषा सम्प्रेषण का वह माध्यम है जिसके जरिए मनुष्य अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भाषा के माध्यम से ही एक-दूसरे तक अपनी बातों को पहुँचा पाना मुमकिन हो पाता है। भाषा नहीं होती तो हम अपने भावों का स्पष्ट तरीके से आदान-प्रदान नहीं कर पाते, अतः कहा जा सकता है कि भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। किसी कृति की रचना प्रक्रिया का आरंभ व्यक्ति के अन्दर उत्पन्न भावों से होता है जो भाषा के आवरण में लिपटकर अभिव्यक्त हो पाता है। कहने का आशय यह है कि रचना के लिए भाव और भाषा दोनों महत्वपूर्ण घटक है। अब यह रचनाकार पर निर्भर करता है कि वह अपनी रचना को मूर्त रूप देने के लिए भाषा के किस रूप

को व्यवहार में लेता है। किसी कृति के सफल होने में अथवा कालजयी बनने में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है, परन्तु उसे प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कई बार रचनाकार भाषा के ऐसे रूप का प्रयोग करते हैं जो अपने शब्द आडंबर से पाठकों को भ्रमित करते हैं। भाषा के इस भ्रामक रूप से भले ही थोड़ी देर के लिए लेखक को यश की प्राप्ति हो जाती है लेकिन वह रचना कालजयी नहीं हो पाती है। रचना के कालजयी होने के लिए उसमें भाषा का सहज सरल रूप होना अनिवार्य माना गया है, जो पाठक को किसी प्रकार से भ्रमित न करें। रचनाकार की सफलता इसी बात में निहित होती है कि वह कथा को पाठक तक सहजता एवं सरलता के साथ पहुँचा दें, उसमें किसी प्रकार का भाषाई आडंबर का पुट न करें। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से देखें तो स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकार हिंदी साहित्य को नया आयाम प्रदान करते हुए नज़र आते हैं। इनके यहाँ भाषा का प्रयोग लीक से हटकर नवीनता के साथ किया गया है, जिसमें मानक हिंदी के साथ उर्दू का प्रयोग तो हुआ ही है साथ ही आँचलिक बोलियों का भी धरल्ले से सहजता के साथ प्रयोग हुआ है। कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उसे जबरदस्ती फिट किया गया हो। भाषा का ऐसा समिश्रण रूप बिरले ही देखने को मिलता है। हिन्दुस्तान विविध भाषा-बोली एवं संस्कृतियों का देश है। ऐसे में भाषा का मिश्रित रूप निश्चित तौर पर रचना में चमत्कार उत्पन्न कर देता है। इन उपन्यासकारों के भाषा प्रयोग संबंधी दृष्टिकोण को व्याख्यायित करते हुए नामदेव जी लिखते हैं कि - "इन उपन्यासकारों ने भाषा से न खेलकर भाषा को महज़ सम्प्रेषण का साधन माना है। इन्होंने भाषा को सिर्फ एक उत्पाद के रूप में देखा है, इसीलिए इनके यहाँ भाषा हावी नहीं है।"[1] ध्यातव्य है कि भाषा के हावी होने पर भाव मर जाता है, दूसरी तरफ यदि भाव सच्चा न हो तो भाषा का योगदान निरीह हो जाता है। आशय यह है कि यदि भाव सही मायने में प्रखर एवं सच्ची हो तो भाषा स्वयं ही धारदार एवं मौलिक हो जाएगी। इन उपन्यासकारों की भाषा मौलिक एवं प्रखर तो है ही साथ ही वह अकृत्रिम है, उसमें किसी तरह का बनावटीपन नहीं है। उनके अन्दर जो भी भाव उत्पन्न हुए हैं उसे बिना किसी लाग लपेट के सहजता से अभिव्यक्त कर दिए हैं।

'काला जल', 'आधा गाँव', 'छाको की वापसी' आदि उपन्यासों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

स्वातंत्रोत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों की विशेषता यह भी रही है कि वे हिंदी, उर्दू तथा साथ में अन्य भारतीय भाषाओं को अपने कथा रूपी धागे में इस तरह पिरोया है कि वह एक-दूसरे से अलग न होकर एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार हिंदी और उर्दू के प्रयोग ने एक तरह से सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा दिया है और हिंदी 'हिन्दुओं की भाषा' तथा उर्दू 'मुसलमानों की भाषा' है जैसी संकीर्ण मानसिकता का विरोध भी किया है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएं हैं इसके बावजूद भी दोनों एक-दूसरे के काफ़ी क़रीब हैं। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ कट्टर विचार के व्यक्ति भाषा को भी मज़हब के आधार पर बाँटने की कोशिश करते रहते हैं। कई बार यह भी कहा जाता है कि दूसरी भाषा के शब्दों के प्रयोग से भाषा के अस्तित्व को खतरा हो सकता है। यह विचार बिल्कुल निराधार एवं मिथ्या है। महज़ यह एक दुष्प्रचार है। सही मायने में दूसरी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से भाषा का शब्द भंडार और समृद्ध होता है न कि भाषा अस्तित्वविहीन हो जाती है। इससे भाषा की खूबसूरती में और निखार आता है।

इन उपन्यासकारों की भाषा को पढ़ते हुए भाईचारे की सोंधी खुशबु को महसूसा जा सकता है। निश्चित तौर पर इन उपन्यासकारों ने भाषा को साधारण रूप में प्रयोग न करके उसे वृहत्तर रूप में प्रयोग किया है, जिसका अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी किया जाना चाहिए। इन उपन्यासों में भाषा केवल संप्रेषण का कार्य न करके कट्टरवादिता, साम्प्रदायिकता, अन्धधार्मिकता और संकीर्णता जैसे घातक तत्वों का विरोध भी करती है।

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में हिंदी, उर्दू, मगही, भोजपुरी, अंग्रेजी आदि भाषाओं और बोलियों के शब्दों का सुन्दर समागम देखने को मिलता है। इन उपन्यासकारों

ने स्थानीय बोलियों को इस प्रकार मानक हिंदी के साथ मिलाकर प्रयोग किया है कि जिसके प्रभाव से उपन्यासों में सजीवता उत्पन्न हो गयी है। कहीं कोई बोरियत महसूस नहीं होता है। अतः आगे भाषा के खुबसूरत प्रयोग को उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण करके किया जा सकता है।

### ➢ उर्दू, अरबी, फारसी का प्रयोग

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का सुन्दरतम प्रयोग हुआ है। यह इन उपन्यासों की भाषागत विशिष्टता भी है। इस प्रकार के भाषिक शब्दों के प्रयोग ने मुस्लिम समाज के परिवेश को उजागर किया है। इन उपन्यासकारों ने आयातित शब्दों को हिंदी में मिलाकर हिंदी भाषा को न केवल समृद्ध किया है बल्कि उसे एक नया व्यक्तित्व प्रदान किया है। राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में इस तरह के शब्दों का सुन्दर प्रयोग कर उपन्यास को चमत्कृत कर दिया है। उदाहरण स्वरूप 'आधा गाँव' की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती है - "भाई साहब ने उनकी नन्हीं-सी चोटी को लॉरी की खिड़की की सलाख़ से बाँध दिया-और फिर जो लॉरी ने एक झटका दिया तो बा'जी अपनी चोटी के सहारे लटक गयीं और ज़ोर से चीख़ पड़ीं। अब घरेलू ज़िंदगी में जमहूरियत तो होती नहीं कि राय-शुमारी हो या छानबीन की जाय और मुलज़िम को सफ़ाई का मौक़ा दिया जाय, इसलिए अम्माँ पूछ-गछ किये बिना बस शुरू हो गयीं और भाई साहब गरदन झुकाकर बैठ गये। गरदन झुकाकर मार खा लेने का फ़न उन्हें बहुत अच्छी तरह आ गया था।"[2] राही मासूम जी की तरह शानी जी ने भी अपने उपन्यास में अरबी फारसी तथा उर्दू के शब्दों का उत्कृष्ट उपयोग किया है। उनका शब्द चयन इतना उम्दा है कि पाठक को पढ़ते हुए इस बात का एहसास नहीं होता है कि यह शब्द किसी दूसरी भाषा का है और उसे बेवजह उपयोग किया गया है। ये शब्द पाठक को हिंदी के ही प्रतीत होते हैं। राही की तरह भले ही उनके यहाँ भाषा का ज्यादा मिश्रित रूप नहीं है फिर भी जितना है उतना ही रचना में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए काफ़ी है। उर्दू का प्रयोग शानी जी ने

खुलकर किया है कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि अनावश्यक रूप में प्रयोग हुआ है। 'काला जल' से एक उदाहरण के माध्यम से शानी के भाषिक प्रयोग की सुन्दरता का अवलोकन किया जा सकता है- "गोलाकार व सफ़ेदीपुती पाक ज़मीन पर उन तमाम ज़रूरी चीज़ों का फैलाव था, जो फ़ातिहा के लिए ज़रूरी थीं काँच के एक गिलास में भरा अछूता पानी, छोटी कटोरी में संदल, उसमें डूबे गुलाब के फूल, मद्धम पड़ते अंगारों वाली ऊददानी, काग़ज़ की पुड़िया में पिसा हुआ लोबान और बीचोंबीच जलती अगरबत्तियों से उठने वाली महक...छोटी फूफी ने तामचीनी की एक रक़ाबी में दो रोटियाँ और हलवा धर कर फ़ातिहा के लिए मेरी ओर सरका दी। मैंने वह फ़ेहरिस्त उठायी। सबसे पहले मिर्ज़ा करामत बेग़ का नाम था"[3]

बदीउज़्ज़माँ जी भी अपने उपन्यासों में अरबी फारसी के शब्दों का बढ़-चढ़कर इस्तेमाल किया है। मुस्लिम परिवेश की कथा होने के कारण उनके पात्रों द्वारा इस तरह के शब्दों का प्रयोग यथार्थपरक लगता है। "उस रोज़ रात में बिस्तर पर लेटा मैं सुबह की घटना के बारे में सोच रहा था। अम्मा का पलंग हमारे पलंग से लगा हुआ था। वह पान लगाने के लिए छालियाँ क़तर रही थीं। उनके हाथ में मुरादाबादी सरौता चमक रहा था। छालियाँ कतरने की आवाज़ के साथ-ही-साथ अम्मा की चूड़ियों की खनखनाहट भी सुनायी दे जाती थी। पर जब अब्बा ज़ोर से हुक्के का कश लेते तो यह आवाज़ हुक्के की गड़गड़ाहट में डूब जाती थी। हमारी छत से दूर एक ताड़ का दरख़त चाँदनी नहाया हुआ बहुत खूबसूरत लग रहा था।"[4] ध्यातव्य है कि भाषा के सहज और सरस बने रहने के लिए यह ज़रूरी है कि वह परिवेशगत शब्दों को प्रयोग में लेकर आए।

मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'आँखों की दहलीज' में भी उर्दू, अरबी-फारसी का प्रयोग इतनी व्यावहारिकता से मिलता है कि पता ही नहीं चलता कि उर्दू आदि के कौन से शब्द हैं और कौन से नहीं। दरअसल वे उर्दू के उन्हीं शब्दों को चुनती हैं जो हिंदी में धरल्ले से व्यवहार किया जाता है। "तो जनाब, मैं यह कह रहा था कि हम कलीयर शरीफ़ वाले बाबा का उर्स कर रहे हैं। आपसे दरख्वास्त है कि कुछ मदद करें।"[5] कुल मिलाकर स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के

उपन्यासों में उर्दू अरबी फारसी शब्दों का व्यवहार इतना स्वाभाविक रूप में हुआ है कि कहीं भी कोई बनावटीपन नहीं लगता है।

### ➢ स्थानीय/ आँचलिक/गँवई बोली का प्रयोग

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने स्थानीय बोलियों का खास तरह से हिंदी और उर्दू में मिलाकर इस्तेमाल किया है। इस संदर्भ में विशेष तौर पर राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, शानी का नाम लिया जा सकता है। इनके उपन्यासों में आँचलिक परिवेश और बोलियों का रचनात्मक प्रयोग हुआ है। राही ने अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में स्थानीय बोली और भोजपुरी को विशेष तौर पर उर्दू में मिलाकर इतना सहज और सुन्दर चित्रण किया है कि उसमें सभी पात्रों का सहज ही व्यक्तित्व सजीव हो उठा है। उर्दू और भोजपुरी के मिश्रित रूप ने उपन्यास को कालजयी बना दिया है। 'आधा गाँव' के कुछ संवादों द्वारा राही के भाषा-कौशल को देखा जा सकता है - "तू मुस्कियात बाड़ू! हई होंठवा काट के फेंक देइब, समझ लू! ई त ना होई कि तनी घरवा के झाड़-पोंछ के चिक्कन कर देई। जाँगरो ना चाही। ई ना सपरी। दुई दिन में बाबा अइहें। मेल्ह ल तूँ। तनी अली अकबर के बाबा के आ लेवे देह। तोहार त हम तौन दुरगत बनाइब कि मुस्कियाबल भुल जइहा!"[6] निःसंदेह राही जी भाषा के प्रति बहुत सचेत दिखाई पड़ते हैं, वे चाहते तो पूरे उपन्यास में सिर्फ हिंदी और उर्दू से काम चला लेते परन्तु उन्होंने स्थानीयता का ख्याल रखते हुए उर्दू-भोजपुरी के मिश्रण का सहज प्रयोग किया। इससे उनके उपन्यास को यथार्थपरक होने का गौरव प्राप्त हुआ। साथ ही लोकभाषा के प्रति उनके आग्रह और प्यार का प्रमाण भी मिलता है। इस संदर्भ में विवेकी राय उचित ही कहते हैं कि - "एक तो उर्दू का प्रयोग, दूसरे उर्दू के साथ भोजपुरी उर्दू का लोकभाषाई रंग दोनों मिलकर एक नए स्वाद का सृजन करते हैं।"[7] राही जी के उपन्यास में मिश्रित भोजपुरी के अधिकाधिक प्रयोग से उसमें उबाऊ होने का डर था लेकिन उन्होंने भाषा के चयन और उसके शब्दों के प्रयोग में इतनी सावधानी बरती है कि इन्हीं मिश्रित शब्दों की वजह से उपन्यास और अधिक लोकप्रिय हो गया। यह कारनामा राही जी ही कर सकते थे। अब्दुल

बिस्मिल्लाह ने भी राही जी के भाषा-चयन संबंधी विचार को प्रकट करते हुए लिखा है कि - "भाषा-चयन और भाषा प्रयोग के मामले में राही साहब ने एक अद्भुत कारनामा किया है। वह यह कि उन्होंने खास तौर से 'आधा गाँव' में मुस्लिम परिवार की भाषा का प्रयोग किया। यह भाषा बिल्कुल टिपिकल है। गाजीपुर जिले के हिन्दुओं या दूसरे लोगों की भाषा वह नहीं है जो मुस्लिम परिवारों में बोली जाती है।"[8] गौरतलब है कि भाषा वह घटक है जिस पर उपन्यास की सार्थकता निर्भर करती है। निश्चित तौर पर राही के उपन्यास में चार चाँद लगाने में आँचलिक भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राही ने जानबूझकर उस अंचल की मिट्टी से सने भाषा का प्रयोग किया है जिसकी खुशबू पूरे उपन्यास को अपनी आगोश में समा ली है। मिट्टी से जुड़ी गंगौली की भाषा का एक और उदाहरण के माध्यम से राही जी की भाषा-चयन संबंधी दृष्टिकोण को देखा जा सकता है- "हमरा माथा त ऊहे दिन ठनका रहा बा'जी, जेह दिन हम ओको अग्गू भैया के दालान में देखा कि अकेली बैठी है। बाकी हम ई ना सोच रहा कि ऊ भागे में ऐसी जल्दी करिहे। हमरे ख़याल में त कुछ बात हो गयी रही...मैं कहत्थ्यूँ कि ई झंगटिया-बो बिल्कुल अंधी हो गयी रही का! मटके-मटके भर की आँख लिये बैठी रही और ओ को ई ना सूझा कि घरवा में का हो रहा है!...सुलैमान परसोएँ न आ रहें। ऊ बेचारा त कोई को मुँह दिखाए लायक ना रह गया।"[9] राही जी की तरह बदीउज़्ज़माँ भी अपने उपन्यास 'छाको की वापसी' में स्थानीय बोली के आग्रह को छोड़ नहीं पाते हैं। बदीउज़्ज़माँ बिहार के गया शहर के निवासी है और उनका उपन्यास 'छाको की वापसी' उसी शहर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। गया शहर में मुख्यतः मगही बोली बोली जाती है। इस लिहाज से उपन्यास में उस बोली का प्रयोग होना वाजिब ही है। यह बदीउज़्ज़माँ का भाषा संबंधी कौशल ही है जो इस उपन्यास में मगही को उर्दू के साथ मिलाकर उसका सुन्दर प्रयोग किया है। बदीउज़्ज़माँ के भाषा-चयन संबंधी इस तकनीक को नामदेव जी राही मासूम रज़ा जी के समकक्ष मानते हुए यह कहते हैं कि- "उपन्यास में लेखक ने इस आँचलिक बोली का जमकर इस्तेमाल किया है। यह प्रवृत्ति बदीउज़्ज़माँ को राही मासूम रज़ा की भाषिक परंपरा में

खड़ा कर देती है। बदीउज़्ज़माँ भी भाषा को अभिजात्य मानसिकता से निकाल कर उसका जनतांत्रीकरण करते हैं। संस्कृतनिष्ठ तथा तत्सम की परिधि से हिंदी को बाहर निकालकर मगही-उर्दू का मिश्रण कर उसमें औपन्यासिक कथा को प्रस्तुत करना, लेखक की भाषिक क्षमता का परिचायक है।"[10] 'छाको की वापसी' उपन्यास में इस मगही और उर्दू के मिश्रित रूप को देखा जा सकता है जिसका सुन्दर प्रयोग हुआ है- "ई जागा से ऊ जागा मारा फिरै है खौराहा! कभी ई दरवज्जे कभी ऊ दरवज्जे! जनावर हो गेलई है सार!...काहे वास्ते सलाम लिखे है हमको। हम से का सरोकार है ओ को!...सोचली हल बेटा बड़ा होइबे, बुढ़ारी में काम ऐबे! हमरा ऐसन नसीब काहाँ?"[11] शानी के उपन्यास में भी स्थानीय बोलियों को देखा जा सकता है। यह बात अलग है कि उनके उपन्यास में राही जी अथवा बदीउज़्ज़माँ जी की तरह बड़े पैमाने पर स्थानीय बोली का प्रयोग नहीं देखा जाता है। 'काला जल' में कुछ-कुछ जगहों पर आँचलिक शब्दों के प्रयोग हुए हैं जो इस प्रकार हैं- दातौन, मुखारी, करलाई हुई, पोत, पोइयाँ, अल्लर, ठंठार खपालना, गिठानें, पीक, गिलौरियाँ, सरौता, खटना, बघारना आदि। इसके अलावा कुछ और दृश्यों को देखें जा सकते हैं जिसमें स्थानीय शब्दों का प्रयोग हुआ है- "लाल चौड़े बार्डर वाली हलकी तोरई-फूली साड़ी में, सिर पर गगरा लिए यही सुनारिन नल से लौटती दिखाई दी थी।"[12] हालाँकि 'काला जल' में थोड़े से स्थानीय शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन जितना हुआ है बड़ी सहजता के साथ हुआ है। शानी के भाषा संबंधी दृष्टिकोण को व्याख्यायित करते हुए गोपाल राय लिखते हैं- "शानी की भाषा सर्जनात्मक विशेषताओं से भरपूर है। परिनिष्ठित हिंदी का देसी स्वाभाव इसमें पूरी तरह से सुरक्षित है। मुस्लिम समाज की कहानी होने पर भी शानी ने इसे अनावश्यक रूप से उर्दू रंजित नहीं बनाया है। वैसे ही अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो मुस्लिम संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। बस्तर में प्रचलित शब्दों के संयत प्रयोग से शानी ने अपनी भाषा को अद्भुत रूप से जीवन्त बना दिया है। सर्जनात्मक भाषा के अन्य गुण तो उसमें हैं ही।"[13] इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकार अपने उपन्यासों में पूरी निष्ठा के साथ स्थानीय

बोलियों का प्रयोग करते हैं। केवल प्रयोग ही नहीं करते हैं बल्कि उसे मुख्यधारा से जोड़कर उसे हमेशा के लिए अमर कर देते हैं। एक और उदाहरण देखीये-"हम कहते थे मत जाओ यहाँ से कौन कहिस था अपना देस और घर-दुआर छोड़ कर जाए को। हबीब ही तो बहकाइस सबको हुआँ जाए को। दुल्हिन तो हुआँ जाए के नाम से काँपती थीं।"[14]

### ➢ व्यंग्यात्मक भाषा

किसी कृति में रोचकता पैदा करने में व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का महत्वपूर्ण स्थान होता है। हास्य-व्यंग के पुट से रचना और अधिक सजीव हो उठती है। बहुत सारे ऐसे प्रसंग होते हैं जिन्हें सीधे-सीधे कहने से वह अर्थ नहीं झलकता जितना कि उसे व्यंग-शैली में कहने से उभरता है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में हास्य-व्यंग शैली का इस्तेमाल बहुत हुआ है। इस कड़ी में राही जी का नाम लिया जा सकता है। राही जी जीवन को सच्चे अर्थों में व्यक्त करने के पक्षधर हैं। वे रचना को केवल साहित्य तक सीमित नहीं छोड़ते उसे जीवन के प्रत्येक पल में जीते हैं। उनके उपन्यास 'आधा गाँव' में कई प्रसंग ऐसे आये हैं जहाँ उन्होंने हास्य-व्यंग का सहारा लिया है। इसलिए नहीं कि इससे उपन्यास में रोचकता आ जायगी बल्कि इसलिए कि सत्य को पाठक तक सटीक ढंग से पहुँचाया जाए। राही मासूम रज़ा, शानी, बदीउज़्ज़माँ एक गंभीर लेखक के साथ-साथ हिंदी साहित्य में मुस्लिम समाज के अगुआ भी हैं। निश्चित तौर पर इन साहित्यकारों ने मुस्लिम समाज की सभी परिस्थितियों को गंभीरता से प्रस्तुत किया है। इन दृश्यों को और सजीव करने हेतु हास्य-व्यंग का उपयोग किया है। वास्तव में हास्य-व्यंग शैली सम्प्रेषण का एक रोचक माध्यम तो है ही साथ ही अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। इस शैली के प्रयोग से रचना में प्रभाव उत्पन्न होता है एवं प्रवाहमयता भी आ जाता है। 'छाको की वापसी' उपन्यास में बदीउज़्ज़माँ ने हास्य-व्यंग शैली का इस्तेमाल करते हुए कुछ प्रसंग को ऐसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है कि वह आकर्षणीय  हो गया है। एक प्रसंग है जहाँ महम्दू अपने अल्लाह से विनती करते हैं कि उसे मदीना बुला ले। इसे सुनकर एक भिखारिन कहती है कि मौला तुम्हें

नहीं बुलायेंग वो तो सिर्फ अमीरों को बुलाते हैं। इस प्रसंग के माध्यम से वह महम्दू की दीनता की ओर भी इशारा करती है और उसकी बेबसी को भी, साथ ही यह भी दर्शाती है कि ईश्वर भी अमिरों के लिए होते हैं गरीबों के लिए नहीं। प्रसंग कुछ इस प्रकार है- "मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे! मौला तुम्हें कभी नहीं बुलाएँगे मदीने में महम्दू मियाँ! मौला भी पैसे वालों को ही बुलावे हैं। अजमेर गरीबनवाज के पास जाए को तो पैसा जुड़े ना है। और कहे है मेरे मौला बुला लो मदीने मुझे।"[15] एक जगह हबीब छाको के साथ ठिठोली करते हुए उस पर व्यंग करते हुए उससे पूछता है कि क्या वह पाकिस्तान जायगा? प्रसंग इस प्रकार है "छाको ! मेरे साथ पाकिस्तान चलोगे? छाको हँसते हुए बोला- बाबू की बात! हम का करबई ऊहाँ ज़ाके?"[16] दरअसल हबीब व्यंगात्मक लहजे में छाको से पाकिस्तान जाने को पूछता है जबकि वह जानता है कि छाको जैसे लोग पाकिस्तान नहीं जाएगा और न ही हबीब चाहता है कि छाको जैसे अनपढ़ लोग पाकिस्तान जाए। हबीब का मानना है कि पाकिस्तान वैसे लोग जाए जिससे पाकिस्तान की तरक्की हो सके। शानी जी भी अपने उपन्यास में व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग करते नज़र आते हैं। एक दृश्य है मोटर गैराज का जिसे उसके मालीक ने उस दिन साफ़-सुथरे से रखा है। दरअसल इस प्रसंग के माध्यम से शानी जी मोटर गैराज वाले पर व्यंग करते हैं कि भले ही उसकी दुकान साल भर गन्दी रहे लेकिन किसी किसी दिन उसे इतना चमका देता है कि प्रतीत ही नहीं होता कि ये वही दुकान है। "शायद इसीलिए नये रूप में मोटर गैरेज आज अच्छा लगा। बराबर लिपा-पुता साफ़-शफ्फ़ाफ़ शोर-शराबे या हंसी-हुल्लड़ से दूर, रोशनी में लक़ लक़ करता। बिल्कुल उस मोटर ड्राइवर की तरह जो चाहे साल भर गुनाहों में डूबा रहे, लेकिन ईद के दिन नये नये कपड़ों में इत्र-फुलेल लगाये, आँखों में सुरमे की लकीरें गाढ़ी किये और टोपी से सिर छिपाये, बहुत अदब से ईदगाह के सहन में जा बैठे।"[17] राही मासूम रज़ा जी के 'आधा गाँव' में एक पात्र है सैयद मौलवी बेदार हुसैन जिसकी शादी से जुड़े एक हास्य-व्यंग्य प्रसंग के माध्यम से उन्होंने कथा में रोचकता पैदा पर दी है। दरअसल शादी के इस प्रसंग के माध्यम से वे यह दिखाना चाहते हैं कि मुस्लिम समाज में

हड्डी की शुद्धता जैसी ढकोसला व्याप्त है। ऊँच-नीच, जात-पात, नस्ल-वंश आदि पूर्वाग्रहों से समाज ग्रसित है। 'आधा गाँव' में हास्य-व्यंग्य का यह दृश्य देखने योग्य है- "मौलाना साहब ने शादी इसलिए नहीं की कि उनके वालिद क़िबलाओ-काबा होने की हद तक मौलाना थे। बड़े नस्साब भी थे। उन्होंने जो हिंदुस्तान के सैयद-खानदानों के नसबनामों को खंगाला तो मालूम हुआ कि अब कोई बेदाग़ सैयद घराना है ही नहीं कि जिससे वह दूसरी बहू लावे चुनांचे मौलवी बेदार हुसैन सदरुलफ़ाज़िल एक लाक़ोदक मकान में ज़िंदगी को भुगतने के लिए तनहा रह गए। दिन तो ज्यों-त्यों गुज़र जाते, लेकिन रातें परेशान करतीं।...मौलाना के मकान का ज़नाना हिस्सा ख़ासा लंबा-चौड़ा था। क्योंकि जब मौलाना के मूरिसेआला ने यह मकान बनवाया था, तो उन्हें इसका ख़याल भी नहीं था कि एक ज़माने में सैयदों का ऐसा अकाल पड़ेगा कि बेदार को कोई लड़की नहीं मिलेगी। और मौलवी बेदार इसी वीरान जनानेख़ाने में क़ैदे-तन्हाई के दिन गुज़ार रहे थे।"[18] राही ने मौलवी के इस आन्तरिक पक्ष को हास्य व्यंग के माध्यम से उठाकर अपनी व्यंग्यात्मक शैली का उम्दा इस्तेमाल किया है। "मौलवी साहब एक रोज़ फुन्नन मियाँ के घर से झाँकती हुई बच्छन को देख लिया, जो सामने ही कबड्डी खेलनेवाले लड़कों को देख रही थी। ज़ाहिर है कि मौलाना उसे मुड़-मुड़कर नहीं देख सकते थे, इसलिए वह बढ़ते चले गये। लेकिन फिर लगातार कई दिनों तक बछिनया का ख़याल लाल चीटियों की तरह उनके बदन से लिपटा रहा।"[19] दरअसल मौलवी साहब के खड़े सैयद होने के कारण खड़ी सैयददानी के अभाव में उनकी शादी नही हो पाई थी और अब जब उनकी उम्र पच्चास पार हो चुकी है तो किसी भी नीच-जात की लड़की से संबंध बनाने के लिए तड़प रहे थे, परन्तु जैसे ही उन्हें अपनी धार्मिक और सामाजिक स्थिति का बोध होता वह दिल पर पत्थर रख लेते थे। इस प्रसंग को राही जी ने व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत कर उसे और प्रखर कर दिया है। क्योंकि उपन्यास के कई प्रसंगों से मालूम होता है कि स्वयं को कथित ऊँची जाति मानने वाले जो ऐरे-गैरे से विवाह नहीं कर सकते थे, वो भी सभी नीच-जात वाली महिलाओं के साथ जिस्मानी संबंध रखते हैं। अतः एक ही समय

में जातिगत शुद्धता को अमल करने वाले इस तरह के पाखंड में डूबे समाज के चरित्र को राही जी ने व्यंग भाषा के माध्यम से उजागर किया है। अतः इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने 'काला जल', 'आधा गाँव', 'छाको की वापसी' उपन्यासों में व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग कर उसे सजीव कर दिया है।

### ➢ अंग्रेजी शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग

वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा भारतीयों के जीवन का एक हिस्सा बन गया है। इसे इन्कार नहीं किया जा सकता है। शिक्षितों के मध्य तो यह बोली एवं लिखी जाती ही है साथ ही आम जन मानस के जीवन में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। जब आम जन-जीवन में अंग्रेजी के शब्दों का बिना किसी रोक-टोक के व्यवहार होता है तो ऐसे में लाज़िमी है कि इस जीवन को दर्शाने के लिए लेखक भी कहीं कहीं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करते हैं जो कि कथा में अनायास ही चला आता है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने अपने कथा में इन शब्दों का खुला इस्तेमाल किया है। यह बात ज़रूर है कि कई बार लेखक अपनी बौद्धिकता का खुला प्रदर्शन करने के लिए अंग्रेजी के शब्दों का ज़रूरत से अधिक प्रयोग करता है, किन्तु इन कथाकारों ने कहीं भी इस तरह की धूर्तता नहीं की है। उनके उपन्यासों में जहाँ कहीं भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है वह सहज ही हुआ है, जिससे कथा में रोचकता ही उत्पन्न हुई है। कहीं भी ऊबाऊ उत्पन्न नहीं हुआ है। वैसे तो राही जी अपने उपन्यास 'दिल एक सादा कागज' में अंग्रेजी शब्दों का अधिक प्रयोग किया है परन्तु 'आधा गाँव' में बहुत कम इस्तेमाल हुआ है। खासकर ऐसी जगहों पर हुआ है जहाँ उपयोग न करने से बात शायद नहीं बनती, और जो उसके इस्तेमाल से रोचकता आई है वह इस्तेमाल नहीं करने से नहीं आती। कुछ उदाहरण देखीये - "यतीम का हिस्सा अंजुमने-हुसैनिया के ज्वाइंट सेक्रेटरी मश्शू मियाँ ने बेचना शुरू किया।"[20] और एक उदाहरण "डिप्टी अली हादी ने कहा, यह तो सोचो कि आजकल शकर नहीं मिलती और भाई बशीर ने मुश्किल से यह मिठाई बनवायी होगी। मैंने तो इसी ख़याल से सप्लाई-ऑफिसर से कह

रखा था, उस बेचारे ने शकर की तीन बोरियाँ चाँद-रात भिजवा दी थी।"[21] इसके अलावा कई और जगहों पर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे - पॉपुलैरिटी, हाईकोर्ट, जस्टिस, कलेक्टर, वार फण्ड, फैसन आदि। इब्राहीम शरीफ़ जी ने भी अपने उपन्यास 'अँधेरे के साथ' में अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल किया है "अफसर की हत्या के बाद मुझे लगता है कि मैं और बेहिसाब लोगों की निर्दयता पूर्वक हत्या कर सकता हूँ।"[22] इसी तरह के और वाक्य देखे जा सकते हैं जिसमें अनायास ही अंग्रेजी के शब्द आ गए हैं "हाँ, तनख्वाह सिर्फ चालीस रुपए होगी लेकिन तुम बेशक गाँव में अपनी तनख्वाह डेढ़ सौ बता सकते हो-चालीस बताने में शर्म लगती हो तो रिकार्ड में दिखाने के लिए भी डेढ़ सौ ही तनख्वाह होगी"[23] मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'आँखों की दहलीज' में भी यत्र-तत्र अंग्रेजी भाषा के शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय परिवार को आधार बनाकर लिखा गया है जिसमें शिक्षित वर्ग का चित्रण है। जाहिर है जहाँ शिक्षित वर्ग आपस में वार्तालाप करते हैं वहाँ अंग्रेजी के दो चार शब्द व्यवहार में लाये बिना बात ही पूरी नहीं होती। मेहरुन्निसा परवेज़ ने पात्रों के अनुकूल ही शब्दों का चयन किया है। उदाहरण देखीये "जमीला बाथरूम में थी और तालिया जल्दी-जल्दी बैग की चेन खींच रही थी।"[24] एक और प्रसंग दर्शनीय है जिसमें डॉ. शशि और तालिया के मध्य बातचीत हो रही है जिसमें सहज ही अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग हुआ है- "शशि का चेहरा फ़क-सा पड़ गया, वह देर तक तालिया को देखती रही, फिर उसके कंधे को दबाती हुई बोली, डोंट वरी, जीवन में और भी सुख हैं इसके अलावा।"[25]

'छाको की वापसी' उपन्यास में वैसे तो अंग्रेजी का इस्तेमाल बहुत कम हुआ है। अनावश्यक रूप में प्रयोग होना भी नहीं चाहिए। बदीउज़्ज़माँ ने इसका पूरा ख़याल रखा है। उन्होंने अंग्रेजी शब्दों का वहीं प्रयोग किया है जहाँ करना आवश्यक भी था और कथा की मांग भी थी। इसी वजह से उन्होंने परिस्थिति और पात्रों के अनुकूल ही व्यवहार किया है। बकौल नामदेव जी "कोई भी भाषा फिर चाहे वह अंग्रेजी ही क्यों न हो अगर उसका देशकाल और

पात्रानुकूल प्रयोग किया जाए तो उसकी रचनात्मकता अवश्य बढ़ जाती है, वह फैशन के तौर पर या बनावटी नहीं लगती। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि अगर इनका मौलिक रूप में इस्तेमाल न किया जाता तो उस परिस्थिति और पात्र का व्यक्तित्व ठीक से सामने नहीं आता। इस दृष्टिकोण से बदीउज़्ज़माँ का 'छाको की वापसी' ऐसा उपन्यास है, जिसमें अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल तो है, लेकिन पात्रानुकुल और कथ्य की मांग के अनुरूप"[26] ध्यातव्य है कि भाषा का व्यव्हार परिस्थितयों के अनुकूल ही सार्थक होता है। बदीउज़्ज़माँ ने 'छाको की वापसी' में अंग्रेजी भाषा का सहज और सार्थक इस्तेमाल किया है। वे अंग्रेजी शासन के अधीन अपने दादा जी के कार्यकाल का एक दृश्य वर्णन करते हैं जिसमें अंग्रेजी के शब्दों का सहज व्यवहार किया है - "हैलेट गया का डिस्ट्रिक्ट मज़िस्ट्रेट था। एक बार फ़रज़ंद दादा हैलेट साहब के बंगले पर किसी काम से गए तो अपनी आदत के मुताविक बहुत कीमती सूट पहने हुए थे हैलेट की बीवी पति से फ़रज़ंद दादा के सूट की तारीफ करते हुए कहने लगी - 'मिस्टर अहमद कितना ओम्दा ड्रेस पहनता है। वंडरफुल!' हैलेट ने बदला लेने के लिए फ़रज़ंद दादा को किसी बहाने से अपने चैम्बर में बुलवाया। 'तुम एतना अच्छा ड्रेस कौन माफिक पहनता है। ब्राइब तो नहीं लेता तुम?' उन्होंने जवाब दिया 'मुझे ब्राइब लेने की क्या जरूरत है। तुम जैसे टुच्चों को मैं अपने यहाँ मुलाज़िम रख सकता हूँ। रास्कल! यू सन ऑफ़ ए स्वाइन।"[27] उपर्युक्त संवाद में अंग्रेजी का प्रयोग परिस्थिति और पात्रों के अनुकूल ही हुआ है। ऐसा होने से कथा में और अधिक सजीवता उत्पन्न हो गयी है। शानी के 'काला जल' उपन्यास में भी अंग्रेजी शब्दों का खुला एवं सार्थक इस्तेमाल हुआ है। ये शब्द कोई अंजान शब्द नहीं हैं, रोजमर्रा के जीवन में सहज ही प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। शानी का भाषा-चयन उम्दा तो है ही उसके सही प्रयोग का उन्हें अच्छा ज्ञान भी है। 'काला जल' में कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं- "मोटे-मोटे सरदार, लाल चर्बी चढ़ी हुई आँखों और कमज़ोर शरीर वाले मुसलमान ड्राइवर-क्लीनर, अनाज के व्यापारी, फूड डिपार्टमेंट के एक-दो इंस्पेक्टर और उनके दोस्तों में से एकाध मनचले-कमोबेश ये ही सभी इन चारपाइयों पर रात देर तक जमे

रहते हैं।"[28] उपर्युक्त वाक्य में तीन चार शब्द ऐसे प्रयोग हुए हैं जो अंग्रेजी के हैं लेकिन उसका प्रयोग सहज ही हुआ है। ऐसा नहीं लगता कि कोई अलग से अनोखा समझ में जल्दी न आने वाला हो। ये सारे शब्द ऐसे हैं जो आम जनजीवन का हिस्सा बन चुके हैं। इसी कारण लेखक भी उसे बिना किसी हिचकिचाहट के प्रयोग किया है। अतः कुल मिलाकर देखा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने ज़रूरत अनुसार ही अंग्रेजी के शब्दों का रचनात्मक प्रयोग किया है। वर्तमान समाज मिश्रित भाषा में ही अपने भावों को अभिव्यक्त कर रहा है अतः यह लाजिमी है कि लेखक परिस्थिति एवं पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करेगा ही इसमें कोई दो राय नहीं है। इन लेखकों ने जिस तरह से अंग्रेजी के शब्दों का चयन व इस्तेमाल किया है वह आवश्यकता अनुरूप ही है जो किसी भी तरह से हिंदी भाषा को क्षति पहुँचाने का काम नहीं करती है, बल्कि उसे और अर्थवत्ता और महत्ता प्रदान करती है।

### ➢ मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग

जिस प्रकार पद्य की भाषा को परिमार्जित करने के लिए कवि रस, छंद, अलंकार, बिम्ब आदि का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार गद्य की भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। मुहावरे के प्रयोग से भाषा में ओज, चमत्कार आदि का संचार होता है। भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का यह रचनात्मक शैली है। इसे पढ़े-लिखे से लेकर अनपढ़ सभी प्रयोग करते हैं। मुहावरों का प्रयोग आम बोलचाल में भी होता रहता है। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में भी मुहावरे एवं लोकोक्तियों का अच्छा इस्तेमाल हुआ है। इन उपन्यासकारों ने इस भाषा-शैली के उपयोग से व्यक्ति के समुदाय, परिवेश की घटना और मनोविज्ञान को बड़ी सरलता के साथ व्यक्त किया है। शानी ने अपने उपन्यास में मुहावरों का प्रयोग कर लोकजीवन का यथार्थवादी रूप प्रकट किया है। 'काला जल' के केन्द्रीय पात्र फूफी और उनकी सास इस्लाम बी के बीच नोंक-झोक का चित्र प्रस्तुत करने के लिए शानी ने अत्यंत रमणीय मुहावरेदार भाषा-सौन्दर्य का प्रयोग किया है।- "अगर छोटी फूफी कभी प्रतिवाद करने की कोशिश करतीं अथवा

धीरे से कहतीं, 'कहाँ अम्मां, अभी थोड़ी देर पहले तो झाड़-बुहार कर उठी हूँ', या यह कि कल ही तो सारा घर लिपा था, बी और आग हो जातीं, लो हमें अंधी बना रही है! सीधे कह दे कि आँखें फूट गयी हैं या बुढ़ापा आ गया है तो अक्ल सठिया गयी है! अरे, यह जवानी का घमंड अपने पास रख...यह किसी का साथ नहीं देती, चार दिन की चांदनी फिर अँधेरी रात!"[29] शानी के उपन्यास में प्रयुक्त अन्य मुहावरों के कुछ उदाहरण और देखे जा सकते हैं; "दूर का सलाम रखना"[30], "कटी ऊँगली में चुना लगाना"[31]

शानी जी की तरह राही जी के उपन्यासों में भी मुहावरों का प्रयोग हुआ है जो अत्यंत आकर्षण का केंद्र बन चुका है। राही जी ने 'आधा गाँव' में भोजपुरी मिश्रित उर्दू का प्रयोग किया है जिसे और यथार्थवादी और चमत्कृत करने में मुहावरों का विशेष योगदान रहा है। छोटी सी उम्र में प्रदेश में काम करने जाने की विवशता को राही जी ने मुहावरेदार भाषा शैली में सुन्दर चित्रण किया है- "लेकिन इन दीवारों पर कोई बैठता ही नहीं। क्योंकि जब इन पर बैठने की उम्र आती है तो गज़भर की छातियोंवाले बेरोज़गारी के कोल्हू में जोत दिए जाते हैं कि वे अपने सपनों का तेल निकालें और उस ज़हर को पीकर चुपचाप मर जायँ।"[32] इनके उपन्यास में इस्तेमाल हुए कुछ और मुहावरे देखे जा सकते हैं- 'न रहिए बाँस न बजिए बाँसुरी', 'सौ सुनार की और एक लुहार की', दरिया में रहकर मगरमच्छ से बैर, इत्यादि।

बदीउज़्ज़माँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' में भी मुहावरेदार भाषा की सूक्ष्म समझ देखी जा सकती है। उनके संवादों में मुहावरों को इस तरह मिला देते हैं कि उसे अलग करके देखना असंभव हो जाता है।-"कई बार दिल में इरादा करता कि अब्बा से कुछ कहूँ इसके बारे में। पर उनको देखते ही हिम्मत जवाब दे देती। जाने गुस्से की हालत में क्या कर बैठें? अम्मा तक तो थर-थर कांपती हैं उनके सामने। मैं किस खेत की मूली हूँ! यही सब सोचकर ज़बान खोलने की हिम्मत नहीं होती थी।"[33]

मेहरुन्निसा परवेज़ और इब्राहीम शरीफ़ जी भी अपने उपन्यासों में मुहावरों का प्रयोग करते हैं परन्तु आंशिक रूप में ही। 'आँखों की दहलीज़' उपन्यास से एक मुहावरा द्रष्टव्य है- "जब से उसने अपना भविष्य सुना वह एकदम बदल गई है। हमेशा हँसने-बोलने वाली तालिया जैसे काठ हो गई। वह घर का हर काम मशीन की तरह करती। शमीम उसे देखता, लगता जैसे हाड़-मांस की तालिया अब एक ऐसी मशीन है जो इंसान की तरह खाती-पीती और सोती है।"[34] 'अँधेरे के साथ' उपन्यास से भी एक मुहावरा देखा जा सकता है "मज़हब और बिरादरी के नाम पर गाँव के भोले-भाले लोगों को फुसलाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले नीच चेयरमेन को हर संभव कोशिश के साथ हराना होगा उसकी हार मेरी जिंदगी की बहुत बड़ी जीत होगी।"[35]

उक्त विश्लेषण से साफ स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुहावरों से युक्त भाषा का बढ़-चढ़कर इस्तेमाल हुआ है जिससे इन उपन्यासों में भाषाई-सजीवता उत्पन्न हो गयी है। निश्चित तौर पर मुहावरों के प्रयोग से कथा कहने का अंदाज ही निराला हो जाता है और उसे पढ़ने-सुनने में अधिक आनंद की अनुभूति होती है। इससे कथा में ओज उत्पन्न तो होता ही है साथ ही लोकजीवन का सुन्दर अवलोकन भी हो जाता है। इस दृष्टि से देखें तो इन उपन्यासकारों ने लोकजीवन के ज़बान पर चढ़ी गंवई भाषा में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का ऐसा सुन्दर इस्तेमाल किया है कि सम्पूर्ण कथा की भाषिक संरचना जीवंत हो उठी है।

अतः यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि शानी, राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़ और मेहरुन्निसा परवेज़ ने अपने उपन्यासों में ऐसी भाषा-शैली का प्रयोग किया है जो सहज और प्रभाव उत्पन्न करने वाली है। इनका भाषा-चयन जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करने में सहायक हुआ है।

**संदर्भ सूची:**


1. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-221
2. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-28
3. शानी, काला जल, पृष्ठ-15
4. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-57
5. मेहरुन्निसा परवेज़, आँखों की दहलीज, पृष्ठ-68
6. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-113
7. (सं) भीष्म साहनी, आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृष्ठ-500
8. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अभिनव कदम (6-7), अक्टूबर 2002, पृष्ठ-240
9. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-121
10. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-225
11. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-80
12. शानी, काला जल, पृष्ठ-4
13. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृष्ठ-291
14. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-82
15. वही, पृष्ठ-56
16. वही, पृष्ठ-24
17. शानी, काला जल, पृष्ठ-3
18. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-106
19. वही, पृष्ठ-107
20. वही, पृष्ठ-127
21. वही, पृष्ठ-127

22. इब्राहीम शरीफ़, अँधेरे के साथ, पृष्ठ-22

23. वही, पृष्ठ-30

24. मेहरुन्निसा परवेज़, आँखों की दहलीज, पृष्ठ-35

25. वही, पृष्ठ-66

26. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-236

27. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-86, 87

28. शानी, काला जल, पृष्ठ-2

29. वही, पृष्ठ-88

30. वही, पृष्ठ-193

31. वही, पृष्ठ-252

32. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-9

33. बदीउज़्ज़माँ, छाको की वापसी, पृष्ठ-47

34. मेहरुन्निसा परवेज़, आँखों की दहलीज़, पृष्ठ-1

35. इब्राहीम शरीफ़, अँधेरे के साथ, पृष्ठ-96

## 6.2 शिल्प

किसी कृति की रचना में भाषा और शिल्प दोनों महत्वपूर्ण घटक होते हैं। इन दोनों के माध्यम से ही भावों को ठीक-ठीक एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जाता है। हिंदी कथा साहित्य में इन दोनों का अधिक महत्व है। इन दोनों के अभाव में सृजन की कल्पना व्यर्थ है। डॉ. नामदेव जी शिल्प को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "किसी उपन्यास में आन्तरिक गठन का जितना महत्त्व होता है, उतना ही उसके बाहरी रूप सौन्दर्य का महत्व होता है। आन्तरिक गठन और बाहरी रूप सौन्दर्य में जितनी गहरी एकरूपता होगी, वह उपन्यास उतना ही प्रभावी और महत्वपूर्ण होगा। सामान्यतः उपन्यास के गठन को शिल्प कहा जाता है।"[1] नामदेव जी के इस कथन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि उपन्यास के गठन को ही शिल्प कहा जाता है।

आरंभिक दौर में उपन्यास को परखने के लिए पारम्परिक तकनीक की मदद ली जा रही थी जिसमें मुख्य रूप से कथानक, देशकाल, चरित्र-चित्रण, संवाद, भाषा-शैली, उद्देश्य आदि सम्मिलित थी। नामदेव जी को माने तो उन्होंने इन तत्वों को उपन्यास के अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार तो किया परन्तु उसे आवश्यक नहीं माना। वे लिखते हैं कि "ये तत्व उपन्यास के लिए अनिवार्य तत्व अवश्य हैं, परन्तु आवश्यक नहीं कि ये सारे तत्व किसी एक उपन्यास के लिए महत्त्व रखते ही हों। प्रत्येक उपन्यास में किसी-न-किसी तत्व की प्रधानता और कलात्मक प्रयोगधर्मिता अवश्य होती है। अतः उपन्यास-समीक्षा के लिए प्रचलित ये मापदंड उपयुक्त नहीं लगते हैं।"[2] वे आगे लिखते हैं कि "इसके बाद एक ऐसा दौर आया जिसमें उपन्यास के रूप और वस्तु पर ध्यान केन्द्रित किया गया, परन्तु उपन्यास-समीक्षा हेतु अंग्रेजी हिंदी के विद्यमान शब्दों ने भ्रम की स्थिति बनाये रखी। क्राफ्ट, फार्म, स्ट्रक्चर, पैटर्न, डिजाइन, ढाँचा, शिल्प, कला, शिल्प विधान, शिल्प प्राविधि इत्यादि शब्द आपस में इतने मिश्रित हो गए हैं जो कन्फ्यूजन पैदा करने लगते हैं। असल में ये सारे पारिभाषिक शब्द उपन्यास के ढाँचे की ही बात करते हैं, लेकिन यह तय नहीं कर पाते कि कौन सा पारिभाषिक शब्द सबसे सटीक और वैज्ञानिक हो सकता है"[3]

डॉ गोयनका शिल्प शब्द को अंग्रेजी के क्राफ्ट 'शब्द' के पर्याय के रूप में स्वीकार किया है उनका मानना है कि - "अंग्रेजी का क्राफ्ट शब्द ही वास्तव में, शिल्प का पर्याय बन सकता है। वस्तुतः दोनों शब्दों के अर्थों एवं प्रयोगों में पर्याप्त समानता है, जिसे श्ब्दकोशों तथा अन्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। मौनिअर विलियम्स, आप्टे, डॉ. रघुवीर, आदि ने 'शिल्प' शब्द का पर्याय 'क्राफ्ट' शब्द को ही माना है। संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं में 'शिल्प' तथा 'क्राफ्ट' शब्दों का व्यापक एवं संकुचित अर्थ समान रूप से मिलते हैं, और दोनों में ही 'कौशलपूर्ण-रचना' के अर्थ को स्वीकार किया गया है। अतः इन प्रमाणों को देखते हुए 'शिल्प' शब्द के पर्याय के रूप में 'क्राफ्ट' शब्द को स्वीकार कर लेने में दो मत नहीं होने चाहिए।"[4] गोयनका जी के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि शिल्प शब्द के पर्याय के रूप में 'क्राफ्ट' शब्द को स्वीकारा जा सकता है। वे आगे शिल्प विधि और शिल्प विधान जैसे विविध अर्थों वाले पारिभाषिक शब्दों के बारे में लिखते हैं कि- "शिल्प विधि निर्माण या रचना के नियम अथवा सिद्धांतों का वाचक है, जिसे हमने 'टेकनीक' के पर्याय के रूप में स्वीकार किया है, और 'शिल्प विधान' शब्द किसी एक कलाकृति के संयोजक अथवा प्रबंध के भाव को प्रकट करता है, जबकि 'शिल्प विधि' के अंतर्गत किसी कलाकार (उपन्यासकार) की समग्र रचनाओं में विद्यमान सामान्य रचना के नियमों और प्रवृत्तियों को रखकर देखा जा सकता है।"[5] अतः कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'क्राफ्ट' का पर्याय 'शिल्प' है। यह शिल्प दो भागों 'शिल्प विधान' (प्रबंध या संयोजन) और 'शिल्प विधि' (टेकनीक) में बंटा होता है। अतः ये दोनों पारिभाषिक शब्द उपन्यास की सम्पूर्णता को समझने में मदद करते हैं। बकौल नामदेव "शिल्प वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा रचनाकार अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को साकार करता है। इसके माध्यम से ही रचनाकार अपने अमूर्त जगत को मूर्त रूप प्रदान करता है। शिल्प के दो स्तर हैं-आतंरिक और बाह्य। आंतरिक स्वरूप का संबंध रचना-प्रक्रिया में आने वाली उस मनोदशा से है, जिसके अनुरूप वह शिल्प की खोज करता है। जब रचनाकार की अनुभूति और संवेदना शब्दबद्ध होकर,

रचना के रूप में आ जाती है, तो वह 'शिल्प' का बाहरी स्वरूप कहलाती है। 'शिल्प' का आन्तरिक स्वरूप जहाँ सूक्ष्म होता है, वहीं दूसरी ओर इसका बाहरी स्वरूप ठोस एवं स्थूल होता है। शिल्प के आन्तरिक व बाहरी रूप का संवाहक भाषा-शैली होती है, क्योंकि इसके द्वारा ही रचनाकार अपनी अनुभूतियों और विचारों को चित्रित करता है।"[6] आगे इन्हीं शिल्प के प्रबंध और टेकनीक के आलोक में स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों की पड़ताल की जाएगी। शानी, राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़ ऐसे ही रचनाकार हैं जो परम्परागत उपन्यास-शिल्प को तोड़कर आधुनिक शैल्पिक प्रयोग करते हैं।

- **प्रतीकात्मकता**

प्रतीक एक ऐसी क्रिया है जो किसी गूढ़ अर्थ का या विचार का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत का प्रतिनिधित्व है। प्रतीक को व्याख्यायित करते हुए आशुतोष मिश्र जी लिखते हैं - "मनोविज्ञान में प्रतीक किसी दमित अचेतन इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यवहार या वस्तु है। साहित्य में प्रतीक अप्रस्तुत विधान है। साहित्यिक प्रतीक के मूल में लक्षणा एवं व्यंजना शब्दशक्तियाँ कार्य करती हैं"[7] प्रतीक महज़ उपन्यास आदि को सौन्दर्य प्रदान करने वाला कारक नहीं है, वरन वह जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने वाला सशक्त माध्यम है। इस शिल्प के इस्तेमाल से उपन्यास में विशिष्ट भाव उत्पन्न हो जाता है जिससे पाठकों की पढ़ने की रूचि में इजाफा तो आता ही है साथ ही लेखक और पाठक दोनों का संगम हो जाता है। इस दृष्टिकोण से देखें तो स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रतीकों का इस्तेमाल जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने के लिए किया गया है। इस संदर्भ में इब्राहीम शरीफ़ के उपन्यास 'अँधेरे के साथ' को देखा जा सकता है जिसमें प्रतीकात्मक-शिल्प का सुन्दर इस्तेमाल हुआ है। इस उपन्यास में समुद्र का प्रतीक समूचे शोषक वर्गों के लिए किया गया है जो भ्रष्टाचार करके अपने हित को साधते हैं। गरीबों को लुट-खसोट कर स्वयं का घर भरते हैं। यह समाज ऐसे लुटेरों और भ्रष्टाचारियों से भड़ा पड़ा है जिसकी वजह से आम आदमी का जीवन

यापन दुरूह हो जाता है। उपन्यासकार एक ऐसे व्यक्ति की कहानी कहता है जो अपने बीमार माता-पिता और जवान बहन के पेट भरने के लिए तमाम तरह की कोशिश करता है, परन्तु भ्रष्टाचारियों के कारण उसे हर जगह के काम से निकाल दिया जाता है। डॉ. भी अतिरिक्त पैसे लिए बगैर उसके माता-पिता की इलाज नहीं करता है। इस प्रकार लेखक यहाँ समुद्र के माध्यम से समूचे देश में व्याप्त शोषक वर्गों का अत्याचार और शोषण को दिखाना चाहता है। बकौल इब्राहीम शरीफ़ "समुद्र का गर्जन और भी बढ़ता हुआ लगता है मानो मुझे और सूर्य को चाट जाने के लिए उत्साहित हो गया हो। यद्यपि हमें खाकर समुद्र हमारी मनोकामनाएं ही पूरी करने जा रहा है फिर भी मुझे उसकी नीयत पर गुस्सा आता है। पता नहीं अब तक कितने असंख्य लोगों को इसने अपने भीतर उतार लिया होगा, अब भी हम दोनों को निगलने के लिए उतावला और उत्साहित हो रहा है। मैं समुद्र की तरफ त्योरियां चढ़ाकर घूरता हूँ और पूरी विद्रूपता के साथ खखारकर थूक देता हूँ। नज़र नहीं आता है कि मेरा थूक कहाँ गिरा है। फिर भी खुश होता हूँ कि बदनीयत सागर का मैंने भारी अपमान किया है। ज़ाहिल कहीं का। ज्यों-ज्यों पेट भरता जाता है त्यों-त्यों भूखा हो जाता है। ख्याल आता है, सबका यही हाल है। जो भी औरों को खाकर तोंद फुला लेता है, वह और भूखा हो उठता है।"[8]

शानी जी ने काला जल के प्रतीक को खूबसूरती से 'काला जल' उपन्यास में इस्तेमाल किया है। 'काला जल' दरअसल इस उपन्यास का प्रतीकात्मक शीर्षक है जो इसके पिछड़े और अभिशप्त अंचल में फैली सड़ांध, जीवन में लगातार हो रहे क्षय एवं उसके टूटन-घुटन का आभास देता है। उपन्यासकार दो परिवारों की तीन पीढ़ियों की कहानी कहता है जो देश की आजादी के पूर्व से लेकर आजादी प्राप्त होने के कुछ बाद तक को अपने में समेटे हुए है। यह अंचल मुख्य धारा से इतने कटे हुए हैं कि आजादी की लड़ाई की भनक यहाँ तक नहीं आती है और शायद यहाँ के लोगों को उसकी ज़रूरत भी नहीं थी। परन्तु इसी बीच नायडू और मोहसिन देश को आजाद कराने की मुहीम छेड़ता है और अपने स्तर पर क्रांति का सूत्रपात करता है जिसके

फलस्वरूप स्कूल का झंडा जलाया जाता है। लोगों में चेतना भरने हेतु वाणी विलास जी को बुलाया जाता है। परन्तु वह अंचल इतना चेतनाहीन और विक्षिप्त है कि उसका कोई असर नहीं होता है। उलटे नायडू को बेमौत मरना पड़ता है और मोहसिन को अपने व्यर्थ जीवन के साथ तड़पती चिड़ियों की तरह रह जाना पड़ता है। "बहुत पहले फूफी के सामने वाले गंदे तालाब के जल में एक लड़का सिंघाड़े निकालने के लिए कूद पड़ा था तैरना वह जानता नहीं था, लेकिन घुस कर निकलने के लिए जैसे यत्न उसने किये थे, उस दृश्य को भूल सकना आज भी मेरे लिए कठिन हो गया है।"[9]

आजादी के बाद वैसे लोग गाँधी टोपी पहनकर नेता बन जाते हैं जो क्रांति के समय किसी प्रकार से अंग्रेजों की निगाह में नहीं आना चाहते थे। नौकरी नहीं छोड़ना चाहते थे परन्तु जैसे ही आजादी प्राप्त हुई वे लोग ही नेता बन गए परन्तु मोहसिन जैसा क्रांतिवीर साम्प्रदायिकता की घूंट पिने के लिए अभिशप्त रह जाता है। सिर्फ इसीलिए कि वह मुस्लिम लड़का है। आजादी के बाद की इस विडंबना को शानी ने प्रतीकों के माध्यम से सुन्दर अभिव्यक्त किया है जहाँ बेखास्ता मोहसिन को एक असहाय चोटिल विवश चिड़िया के प्रतीक के माध्यम से दिखाया है।- "उस दिन मोहसिन के पास से लौटते हुए मन बेहद उदास हो गया था। उसके बाद भी कई दिनों तक उसका प्रभाव वैसा ही बना रहा। अकेले में उस परिंदे की वह करुण तस्वीर और शिद्दत से आँखों के सामने उभर आती और फड़फड़ाते हुए विवश डैनों का क्रंदन मुझे सारी रात सोने नहीं देता..."[10] मोहसिन का इतना व्याकुल होना समस्त मुस्लिमों की विभाजन के पश्चात् की त्रासदी है जो यहाँ स्वेच्छा से रह गए थे परन्तु अविश्वास के पात्र और हाशिए का शिकार होना उनकी नियति बन गयी थी। ऐसे लोग न पाकिस्तान जा पाए न हिंदुस्तान में ख़ुशी से रह पाए। अतः कहा जा सकता है कि 'काला जल' और 'अँधेरे के साथ' उपन्यास में भारतीय मुस्लिम समाज की सामाजिक और राजनीतिक त्रासदी को सुन्दर ढंग से प्रतीकों के माध्यम से उजागर किया गया है।

### ➢ आत्मकथात्मक शिल्प

आत्मकथात्मक शिल्प कथा को यथार्थ परक बनाने में मदद करता है साथ ही उसमें रोचकता भी पैदा करता है जिससे पाठक को पढ़ने में अधिक रूचि पनपती है। शानी के 'काला जल' राही मासूम रज़ा जी के 'आधा गाँव' बदीउज़्ज़माँ जी के 'छाको की वापसी' में आत्मकथात्मक शिल्प का सुन्दर इस्तेमाल हुआ है। शानी के 'काला जल' में बब्बन कथानक के रूप में प्रस्तुत हुआ है जो स्वयं शानी ही है। इसमें शानी ने एक ओर अपनी फूफी के परिवार के माध्यम से मुस्लिम समाज की सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति को दिखाया है तो वहीं दूसरी तरफ बब्बन अपने परिवार की ढहती सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों को दिखाता है। साथ ही उसमें अपने निजी जीवन के कुछ अन्तरंग पल का भी बेबाकी से चित्रण किया है। बब्बन अपने बचपन के साथी मोहसिन के साथ बिताये पल के चित्रण के साथ किशोर अवस्था में अपनी फुफेरी बहन सालिहा के प्रति आकर्षण और उसके साथ बिताये एकांत क्षणों का निर्भीक वर्णन किया है। "अचानक मुझे याद आया कि आपा के कमरे में बिल्कुल अकेला बैठा हूँ और आसपास किसी की आहट नहीं है। मैंने उनके ढेर सलवटों वाले बिस्तर पर एक आशंकित सी निगाह डाली और फिर चौंक कर इधर-उधर देखा कि कोई मुझे देख तो नहीं रहा। उसके बाद अपनी मुर्खता और बचपने की जिज्ञासा पर हंसी आयी। मन हुआ कि आपा के बिस्तरे में लेट जाऊं, पर जैसे-तैसे अपने को रोक कर, मैंने उनका तकिया उठाया, धीरे से उस पर अपने नासापुट रख दिये, एक साँस ले कर आपा के बालों की गंध की याद की और फिर अपनी गोद में डाल लिया।"[11] इसके साथ ही अपने पिता की रंगरलियों का भी चित्रण करता है जिसमें दूसरी स्त्री के साथ अवैध संबंध को दर्शाता है। इस प्रकार ये तमाम ब्यौरा आत्मकथात्मक शिल्प को सिद्ध करता है। शानी का आत्मकथात्मक शिल्प बेहद उम्दा है जो कहानी में ऊब पैदा न कर उसे रोचकता और प्रवाहमयता प्रदान करता है।

शानी जी की भाँती राही जी भी अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में आत्मकथात्मक शिल्प का प्रयोग करते हैं। राही जी का यह उपन्यास उनके अपने गाँव और अपने लोगों की कहानी कहता है जिसमें उन्होंने कुछ काल्पनिक पात्रों के साथ अपने परिवार के असल पात्रों को मिलाकर लिखा है। यही वजह है कि इस उपन्यास में राही जी स्वयं भी उपस्थित हैं- "यह गंगौली कोई काल्पनिक गाँव नहीं है और इस गाँव में जो घर नज़र आयेंगे, वे भी काल्पनिक नहीं हैं। मैंने तो केवल इतना किया है कि इन मकानों को मकानवालों से खाली करवाकर इस उपन्यास के पात्रों को बसा दिया है। ये पात्र ऐसे हैं कि इस वातावरण में अजनबी नहीं मालूम होंगे, और शायद आप भी अनुभव करें कि फुन्नन मियाँ, अब्बू मियाँ, झंगटिया-बो, मौलवी बेदार, कोमिला, बबरमुआ, बलराम चमार, हाकिम अली कबीर, गया अहीर और अनवारुल हसन राक़ी और दूसरे तमाम लोग भी गंगौली के रहनेवाले हैं, लेकिन मैंने इन काल्पनिक पात्रों में कुछ असल पात्रों को भी फेंट दिया है। ये असली पात्र मेरे घरवाले हैं जिनसे मैंने यथार्थ की पृष्ठभूमि बनायी है।"[12] 'छाको की वापसी' उपन्यास में भी बदीउज़्ज़माँ ने आत्मकथात्मक शिल्प का प्रयोग करते हुए स्वयं को खाजे बाबु के रूप में प्रस्तुत किया है। खाजे बाबू छाको के बच्चपन का दोस्त है जो विभाजन की त्रासदी और छूटे हुए वतन के दर्द को राष्ट्रीय स्तर पर उठाता है। वहीं दूसरी तरफ अपने निजी जीवन और अपने परिवार के संघर्ष को भी विस्तार रूप प्रस्तुत करता है जिसमें उनका परिवार और उनके छोटे अब्बा और चाची का परिवार भी सम्मिलित है। विभाजन के बाद छोटे अब्बा का पाकिस्तान जाना और वहाँ जाकर हिंदुस्तान की याद में तड़प कर मर जाना कथा को मार्मिक स्वरूप प्रदान करता है। इसके अलावा खाजे बाबु का स्वयं का जीवन-संघर्ष और छाको के साथ बिताये बचपन के पल का दृश्य कथा में आत्मकथात्मक शिल्प होने को पुष्ट कर देता है।

## ➢ आँचलिकता

आँचलिक और आँचलिकता शब्द संस्कृत की 'अंचल' संज्ञा से बने हैं। "साहित्य में जब एक अंचल-विशेष के इतिहास-भूगोल, परंपरा, रीति-रिवाज, भाषागत विशिष्टताओं और सामाजिक समस्याओं अर्थात उसके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन यथार्थ का चित्रण उस अंचल को केंद्र में रखकर किया जाता है, तो उसे आँचलिकता कहते हैं।"[13] हिंदी में प्रेमचंद के समय से ही ग्राम-केन्द्रित कथाओं की परम्परा थी पर उनके बाद के साहित्यकारों ने विशेषकर अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल आदि ने नगर केन्द्रित कथा साहित्य का सृजन किया। परन्तु आजादी के बाद हिंदी में आँचलिकता का प्रादुर्भाव फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' से हुआ, जिसकी भूमिका में उन्होंने लिखा -'यह है मैला आंचल, एक आँचलिक उपन्यास।' इस भूमिका के साथ उन्होंने आँचलिक उपन्यास की अवधारणा भी सामने रखी, जिसके अनुसार अंचल ही उसका कथानक और कथानायक होता है। उस अंचल का एक निश्चित भूगोल और परम्परा होती है। यहाँ अंचल का जीवन खंडित रूप में नहीं, बल्कि सम्पूर्णता में चित्रित होता है। वह अंचल भौतिक रूप से भले अभावग्रस्त हो, पर उसकी सांस्कृतिक समृद्धि उसे विशिष्ट बनाती है।

आँचलिक उपन्यासों की विशेषता यह है कि उसे किसी खास अंचल के परिवेश, बोली, संस्कृति, स्थानीय मुद्दों को केंद्र में रखकर लिखा जाता है। किसी उपन्यास में यदि ये तत्व पाए जाते हैं तो उसे आँचलिक उपन्यास माना जाता है। परन्तु यह जरूरी नहीं कि कोई उपन्यास पूरा-पूरा आँचलिक उपन्यास ही हो अथवा पूरा-पूरा आँचलिक उपन्यास न हो। इस विषय पर गंभीर चर्चा की ज़रूरत है। कुछ आलोचकों ने 'काला जल', 'आधा गाँव', 'छाको की वापसी' उपन्यास को आँचलिक उपन्यास माना है तो वहीं कुछ ने नहीं माना है। मानने वालों में डॉ. हरदयाल, डॉ. विद्या सिन्हा, मधुरेश तथा डॉ. प्रमिला अग्रवाल अग्रणीय है। उक्त उपन्यासों को आँचलिक मानने वाले विद्वानों का तर्क यह है कि इनमें आँचलिक शैली का प्रमुखता से इस्तेमाल हुआ है। जिन विद्वानों ने इन उपन्यासों को आँचलिक नहीं माना है उनका तर्क यह है

कि इनमें आँचलिक तत्वों का आंशिक रूप में ही प्रयोग हुआ है। इस लिहाज से इसे आँचलिक उपन्यास की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

मूल तथ्य यह है कि 'काला जल' उपन्यास मध्यप्रदेश के बस्तर अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। जिसमें आँचलिक उपन्यास के कुछ-कुछ तत्व उसे यथार्थपरक बनाने के लिए आ गए हैं। परन्तु उसे आँचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें आँचलिक उपन्यास होने की सारी शर्ते मौजूद नहीं हैं। भले ही उसमें अंचल के प्रभाव के कारण कुछ आँचलिक शब्दों यथा- दातौन-मुखारी, करलाई हुई, पोत, पोइयाँ, अल्लर, ढंढार, खापालना, गिठाने आदि का प्रयोग हुआ है, जो महज़ उपन्यास को यथार्थ परक बनाने में मदद के रूप में हुआ है। 'आधागाँव' उपन्यास भी गाजीपुर के एक गाँव गंगौली की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। जिसमें वहाँ की गंवाई भाषा एवं स्थानीय रहन-सहन का पुट देखने को मिलता है परन्तु इस उपन्यास में भी आँचलिक उपन्यास होने की तमाम शर्ते नहीं मिलती हैं। बदीउज़्ज़माँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' भी बिहार के गया शहर को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में भी स्थानीय बोली 'मगही' का प्रयोग हुआ है साथ ही आँचलिक रीति-रिवाज का भी दृश्य देखने को मिलता है। फिर भी इस उपन्यास को आँचलिक उपन्यास नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें भी वो तमाम शर्ते नहीं दिखती है। दरअसल इन उपन्यासों में छिट-पुट आँचलिकता का प्रयोग अवश्य हुआ है परन्तु वह केवल उपन्यास को यथार्थ स्वरूप प्रदान करने तथा उस अंचल की वास्तविक परिवेश की तस्वीर पेश करने की कोशिश में। लेकिन वह किसी भी तरह से उपन्यास में हावी होता दिखाई नहीं पड़ता है। अतः कुल मिलाकर इन उपन्यासों में आँचलिक तत्व तो अवश्य पाए जाते हैं परन्तु वह पूर्ण रूप में आँचलिक उपन्यास नहीं है।

## ➢ ऐतिहासिकता

किसी कृति में जब ऐतिहासिक तथ्यों का प्रयोग होता है तो वह कृति और कलात्मकता को प्राप्त करता है। ऐतिहासिक शिल्प के प्रयोग से कथा यथार्थपरक हो जाती है। डॉ. नामदेव के अनुसार "ऐतिहासिक शैली वाला उपन्यास पाठक को अतीत की यात्रा कराता है। परन्तु एक अच्छा ऐतिहासिक शिल्प वाला उपन्यास वह होता है जो पाठक को वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान की यात्रा कराए।"[14] हिंदी साहित्य के इतिहास में कई सारे उपन्यास ऐसे लिखे गए हैं जिसमें ऐतिहासिक शिल्प का इस्तेमाल किया गया है जैसे- 'झूठा सच', 'तमस', 'सात आसमान', 'सूखा बरगद' आदि। इन उपन्यासों की खास विशेषता यह है कि इसके पात्र समकालीनता को जीते हुए अतीत से वर्तमान और वर्तमान से अतीत की यात्रा करते हैं।

इन्हीं उपन्यासों की श्रेणी में 'काला जल', 'आधा गाँव' को भी रखा जा सकता है क्यूंकि इन उपन्यासों में भी ऐतिहासिक तत्व सम्मिलित है और लेखक ने उसे बेहतरीन ढंग से उपयोग भी किया है। 'काला जल' में शानी जी ने सन् 1910 में बस्तर में आदिवासियों द्वारा किये गए अंग्रेजी शासन के कर्मचारियों के विरोध का चित्रण किया है। इसके अलावा सन् 1947 के देशव्यापी आन्दोलन में हिस्सा लेते हुए नायडू और मोहसिन के माध्यम से तत्कालीन आन्दोलन का ऐतिहासिक तथ्य देखने को मिलता है। 'आधा गाँव' में भी राही मुस्लिम समाज के पूर्वर्ती ठाट-बाट के चित्रण के साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत के मुस्लिम समाज की दयनीय स्थिति का मार्मिक और ऐतिहासिक चित्रण किया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में लेखकों ने ऐतिहासिक तथ्यों का संजीदगी से इस्तेमाल किया है। कहीं भी किसी प्रकार के गलत तथ्यों को परोसने की कोशिश नहीं की है।

अतः उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शानी, राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़ आदि उपन्यासकारों ने नए शिल्प का प्रयोग करके कथा को कालजयी बना दिया

है। वहीं दूसरी तरफ मेहरुन्निसा परवेज़ शिल्प के पुराने विधानों के सहारे ही उपन्यास की रचना करती हैं।

### ➢ उपन्यास कला (तकनीक)

किसी कार्य को संपन्न करने की विधि को तकनीक कहते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी काम को अंजाम दिया जाता है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी इस तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। तकनीक के जरिये ही रचनाकार अपने भावों को रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। हरीश कुमार सेठी 'तकनीक' को व्याख्यायित करते हुए हिंदी साहित्य ज्ञानकोश में लिखते हैं कि "साहित्य सृजन करते समय लेखक जो प्रविधियाँ अपनाता हो, उन्हें तकनीक कहा जाता है। तकनीक का शाब्दिक अर्थ किसी चीज को बनाने या रचने का तरीका है। यह अभिव्यक्ति कौशल है।"[15] अर्थात किसी उपन्यास या किसी कृति को रचने के लिए जिस कला-कौशल की आवश्यकता पड़ती है उसे ही उपन्यास-कला, कृति-कला या तकनीक कहते हैं। तकनीक का इस्तेमाल कथाकार या कवि विभिन्न विधाओं में भिन्न तरीकों से करता है। नाटक में दृश्यों एवं संवादों के रूप में, कविता में छंद, लय, तुक, उपमान, बिम्ब, प्रतीक आदि तत्वों के माध्यम से।

उपन्यास में प्रयुक्त तकनीक को समझने के लिए हमें उपन्यास की संरचना को समझना होगा। इसे समझने के लिए अवलोकन बिंदु (पॉइंट ऑफ़ व्यू) का सहारा लेना पड़ेगा। यह सिद्धांत दरअसल विख्यात उपन्यास समीक्षक पर्सी लब्बॉक का है जिन्होंने उपन्यास समीक्षा के लिए इसे एक महत्वपूर्ण औजार माना है। ध्यातव्य है कि उपन्यास आदि की कहानी कहने की कला को अवलोकन बिंदु कहा जाता है। उपन्यास अथवा कहानी की कथा कहने के लिए एक कथावाचक की आवश्यकता पड़ती है जिसे नरेटर भी कहा जाता है। कथावाचक ही पूरी कथा को पाठकों के समक्ष अलग-अलग तकनीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं और प्रस्तुत करने का यह तरीका भी

भिन्न होता है। कई बार वर्णनात्मक रूप में कई बार पात्रों के आपसी संवाद के माध्यम से कभी फ्लेश बेक शैली के माध्यम से। इस प्रकार उपन्यास रचना के लिए कई प्रकार की तकनीकों की आवश्यकता पड़ती है। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों को देखें तो सहज ही ज्ञात होता है कि शानी, राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, मेहरुन्निसा परवेज़ और इब्राहीम शरीफ़ के उपन्यासों में तकनीक में विविधता है। अतः अवलोकन बिंदु के सहारे ही इन उपन्यासों का अध्ययन संभव है।

### ➢ शानी

मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश को हिंदी साहित्य में लाने का श्रेय सबसे पहले शानी को 'काला जल' उपन्यास के लिए दिया जाता है। यह उपन्यास कथ्य की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है शिल्प की दृष्टि से भी उतनी ही रचनात्मक एवं जीवंत। शानी ने इस उपन्यास की रचना के लिए फातिहा का उपयोग किया है। फातिहा एक प्रकार से हिन्दुओं की  पितृ पक्ष जैसा होता है। हिन्दुओं में पिंड दान किया जाता है और मुस्लिम में फातिहा के दिन आत्माओं की शांति के लिए रोटी हलवा का चढ़ावा दिया जाता है। उपन्यास का कथावाचक बब्बन अपनी फूफी के घर जाकर फातिहा देता है और फूफी के परिवार के मृत व्यक्तिओं में से एक-एक का नाम लेकर फातिहा देता है और इसी क्रम में उसकी कहानी भी कहता जाता है। "छोटी फूफी ने तामचीनी की एक रकाबी में दो रोटियाँ और हलवा धरकर फ़ातिहा के लिए मेरी ओर सरका दी। मैंने वह फ़ेहरिस्त उठाई। सबसे पहले मिर्जा करामत बेग का नाम था।"[16] यह बड़ा ही रचनात्मक तकनीक है जिसे शानी बखूबी इस्तेमाल करते हुए उपन्यास की गठन को पुष्ट करता है। फातिहा के अलावा शानी मुहर्रम त्यौहार का भी सुन्दर प्रयोग किया है। मुहर्रम और फातिहा दोनों का संबंध मृत्यु और अवसाद से है। यह उपन्यास जिस जगह की कथा कहता है वह जगदलपुर का बस्तर गाँव है जो कि देश से कटा हुआ है। बस्तर के लोगों का जीवन दुखों और अवसाद से घिरा हुआ है। उनका जीवन नीरस हो चुका है कहीं कोई मादकता

शेष नहीं बची है। मोहसिन, सल्लो, नायडू, फूफी सभी के जीवन में खालीपन और दुःख भरा हुआ है। इसीलिए शानी इस परिवेश का यथार्थ चित्रण करने के लिए इस तरह के त्योहारों का इस्तेमाल किया है। इस तकनीक में नया प्रयोग के साथ इस बात का डर भी था कि कहीं ऐसे प्रयोग से यह उपन्यास तंत्र-मन्त्र, आत्माओं तक सीमित न रह जाए, परन्तु हुआ इसका बिल्कुल विपरीत।

'काला जल' उपन्यास में अवलोकन बिंदु के रूप में स्वयं शानी बब्बन के रूप में प्रस्तुत है। यहीं पर शानी पहले फ्लैश बैक तकनीक का इस्तेमाल करते हुए फूफी के घर जाकर फातिहा पढ़ता है। इसी फातिहा के माध्यम से पूरे उपन्यास का ताना-बना बुनते हैं। कहानी में जैसे ही बदलाव आता है बब्बन स्वयं किरदार के रूप में उपस्थित हो जाता है। बब्बन यहाँ भोक्ता और द्रष्टा दोनों की भूमिका में प्रस्तुत होता है। बब्बन यहाँ तृतीय पुरुष के अवलोकन बिंदु से कथा को प्रस्तुत करता है। जाहिर सी बात बब्बन अपने जन्म के पहले की बात को बता नहीं सकता। मिर्जा को वह देखा नहीं था सिर्फ उनके बारे में सुना था अतः सुनी हुई बात के आधार पर वह उनकी कहानी कहता है। संभवतः वह यह कहानी अपने घर अथवा फूफी से सुनी होगी। परन्तु जब फूफी की शादी हो जाती है उसके बाद की घटना में बब्बन सिर्फ द्रष्टा नहीं रह जाता वह भोक्ता भी हो जाता है। कथा की विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए ये सारी बातें फूफी के माध्यम से ही कहलवाते हैं। तृतीय खंड में अवलोकन बिंदु बदलकर तृतीय पुरुष से प्रथम पुरुष में परिवर्तित हो जाता है। दूसरे खंड में बब्बन पात्र के रूप में प्रस्तुत हो जाता है। इस समय बब्बन दो भूमिका में आ जाता है। एक छोटा बब्बन जो अपने मित्र मोहसिन का हमउम्र साथी है, दूसरा वह बब्बन जो युवा है तथा फातिहा देने बैठा है एवं अपने भीतर अतीत को जगा रहा है।

शानी ने अपने उपन्यास में उपन्यास कला का बेहतरीन उपयोग किया है। सादगी, सहजता और गंभीरता उनकी तकनीक की विशेषताएं हैं। उन्होंने बड़ी गंभीरता से सभी पात्रों के चरित्र को स्वतंत्र विकसित होने दिया है। साथ ही कथा में यौन संबंधों का भी सहजता के साथ

वर्णन किया है। कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं हुआ है कि उपन्यास को आकर्षक बनाने के लिए अश्लील तत्वों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने शीर्षक भी प्रतीकात्मक चुना है जिसके कई अर्थ हैं और पूरे उपन्यास की संवेदना को अपने अन्दर समाया हुआ है।

➢ **राही मासूम रज़ा**

राही मासूम रज़ा हिंदी कथा साहित्य के नीम का पेड़ है जिसके स्वस्थ छाँव में मुस्लिम कथा साहित्य को फलने फूलने का पर्याप्त अवसर मिला। वैसे इनसे पहले शानी इस क्षेत्र में 'काला जल' जैसा कालजयी उपन्यास के साथ आ चुके थे। 'कालाजल' में मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार के ढहते और टूटते जीवन को दिखाया है। वहीं राही मासूम रज़ा 'आधा गाँव' में ग्रामीण जीवन के सामंत मुस्लिम समाज के ऐसो-आराम की जिन्दगी से बदहाली के दिन तक का सफ़र दिखाया है। इसमें गंगौली के आधे गाँव के दस घरों के सैयद मुस्लिम परिवार को ही कथा का स्रोत बनाया है। कथा दो भागों में विभक्त है, आजादी के पूर्व एवं पश्चात। आजादी के पहले इन सामंतों का रहन-सहन ठाट-बाट एवं शानोशौकत वाला था जिसमें धूम-धाम से मुहर्रम अदि त्योहारों को मनाया जाता था। फौजदारी, दूसरे की बीवियों को जब मन चाहे उठा लेना इनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। परन्तु आजादी के बाद इनकी जमींदारी जाती रही और उसके बाद इनकी हालत धोबी का कुत्ता समान हो गया। विशेषकर वे मुसलमान जो पाकिस्तान नहीं जा पाए यहाँ हिंदुस्तान में दोयेम दर्जे के नागरिक बन गए। इन्हें पाकिस्तान समर्थक, पाकिस्तान के जासूस, जिन्ना की दूम आदि कई उपाधियों से नवाजा गया। राही ने इन तमाम घटनाओं को आत्मकथात्मक शैली में लिखकर मुस्लिम समाज का मार्मिक चित्रण किया है। इन परिवारों में से कई लोग पाकिस्तान चले गए। जो रह गए वे तन्हाई में जिन्दगी काटने को मजबूर हो गएँ। इनके साथ सबसे बड़ी विडंबना यह हुई कि जो असामी लोग इनके टुकड़ों पर पल रहे थे वे अब इनके सामने सीना फुलाए घूम रहे थे। कुल मिलाकर आजादी के बाद इन सामंत मुस्लिम परिवारों की आजादी ख़त्म हो गयी। देश में परिवर्तन आ चुका था। ऐसे में आजादी इन सामंतों के लिए

कष्टकर ही साबित हुआ। अकेलापन और अपनों से बिछड़ने का दर्द, आर्थिक विपन्नता और समय के साथ न चल पाने के कारण ये वर्ग पीछे रह गए। इन्हीं तथ्यों को राही बेबाकी से यथार्थ के साथ चित्रण किया है।

राही के उपन्यास 'आधा गाँव' उनके लिखे अन्य सभी उपन्यासों की भूमिका है जिसे बाद के उपन्यासों में उन्हीं का विस्तार हुआ है। आधा गाँव में राही ने कथ्य और शिल्प का इस प्रकार प्रयोग किया है कि वह महत्वपूर्ण रचना बन गयी है। उन्होंने अपने उपन्यास में पात्रों को गढ़ा नहीं बल्कि उसे वास्तविक जीवन से उठाया है। राही की यही विशेषता उसे अन्य लेखकों से अलग करती है। वे पात्रों के मुँह में अपने शब्दों को नहीं भड़ते अपितु उनका विकास सहज होने देते हैं। उनका पात्र जिस परिवेश से संबंध रखता है उसकी भाषा उसी परिवेश की होती है। वह जिस समाज और जिन लोगों की कहानी कहता है यदि वे लोग आपस में गाली-गलौच करते हैं तो वह गाली भी उपन्यास के पात्रों द्वारा सहज ही इस्तेमाल किया गया है। उपन्यास का यह कलात्मक अप्रोच उसे बनावटीपन से मुक्त करके यथार्थ की धरातल पर ला खड़ा करता है।

राही के उपन्यासों की अवलोकन बिंदु की बात करें तो यह जानना ज़रूरी हो जाता है कि उनके सारे उपन्यासों की अवलोकन बिंदु के रूप में प्रथम पुरुष 'मैं' को ही अपनाते हैं। राही को शायद अपने सिवा किसी और पर भरोसा नहीं था यही वजह है कि वे अपनी कहानी को अपने से दूर होने नहीं देना चाहते थे। चूँकि उनकी कहानी उनके परिवेश और उनसे जुड़ी हुई होती है इसीलिए भी वे कहानी को स्वयं संजीदगी के साथ पाठकों के सामने रखते हैं। वे आरम्भ में ही पाठकों के साथ एक दोस्ताना संबंध कायम कर लेते हैं ताकि उन्हें अपनी कहानी कहने में किसी प्रकार की समस्या न हो। वे अपनी कहानी को प्रामाणिक बनाने के लिए भी स्वयं उपस्थित रहते हैं। 'आधा गाँव' में वे लिखते हैं - "मुझे झूठ में सच और सच में झूठ की मिलावट की कला आती है। इस कहानी में जगह-जगह 'मैं' इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूँ कि यह कहानी मुझसे दूर न जा सके कि मैं जब चाहूँ इसे छू लूँ।...इसलिए मैं प्रथम पुरुष का बेखटके प्रयोग कर रहा हूँ कि

पन्ने स्वयं न उलट सकें, ताकि क्रम शेष रहे और मैं यह देख सकूँ कि क्या था, क्या है और क्या होने वाला है।"[17]

### ➢ बदीउज़्ज़माँ

बदीउज़्ज़माँ जी ने अपने उपन्यासों में नए-नए प्रयोग करके हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध किया है। उन्होंने एक ऐसे रचनाकार के रूप में अपनी जगह बनाई है, जो लीक से हटकर अपने ढंग की रचनाओं का सृजन करते हैं। 'एक चूहे की मौत', 'छठा तंत्र' 'एवं छाको की वापसी' सभी में उन्होंने नए तकनीकों का इस्तेमाल किया है। बहरहाल 'छाको की वापसी' उपन्यास में लेखक ने मुस्लिम समाज की वास्तविक समस्या, रीति-रिवाजों एवं विभाजन की त्रासदी को वृहत्तर विजन के साथ लिखा है। यह उपन्यास लेखक ने आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। बदीउज़्ज़माँ स्वयं इस उपन्यास में खाजे बाबु के रूप में प्रस्तुत हैं। छाको बदीउज़्ज़माँ के बचपन का दोस्त है और इस उपन्यास का नायक भी है क्यूंकि पूरा उपन्यास उसी के इर्द-गिर्द दिखाई पड़ता है। दरअसल खाजे बाबु इस उपन्यास में पूर्व दीप्ती शैली का इस्तेमाल करते हुए उपन्यास की कथा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है जिससे यह पता चलता है कि छाको एक टेलर है जो काम की तलाश में इलाही मास्टर के साथ पूर्वी पाकिस्तान चला जाता है और वहीं का नागरिक बन जाता है। परन्तु जब वह वापस अपने देश आना चाहता है तो उसे कानून की बेड़ी जकड़ लेती है जिसकी वजह से वह हिंदुस्तान में अब स्थायी रूप से नहीं रह सकता है। उपन्यास की कथावस्तु गया शहर की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से निकलकर राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच जाती है। खाजे बाबु इस उपन्यास में पत्रों का रचनात्मक उपयोग किया है जो कथा के विस्तार में अपुर्व सहायता प्रदान करता है। छाको कभी कोडरमा, झुमरी तलैया, हजारी बाग़, कलकत्ता और ढाका से अपनी बुआ जानवा को ख़त लिखता है जिसे जानवा पढ़वाने के लिए खाजे बाबु के पास जाती है। खाजे बाबु इन्हीं पत्रों को पढ़कर अपनी बाल-स्मृतियों में चला जाता है, जहाँ छाको और लेखक स्वयं एक साथ खेलते हुए नज़र आते हैं। निःसंदेह लेखक तकनीक के

रूप में पत्रों का उम्दा इस्तेमाल करके उपन्यास को सुगठित एवं वस्तुनिष्ठ बना दिया है। विभाजन की त्रासदी और भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश में रह रहे मुस्लिम समाज की अन्वेषित यथार्थ को भी लेखक ने मार्मिकता के साथ दिखाया है। गया से बांग्लादेश गए खाजे बाबु के चचेरे भाई हबीब के पत्रों से यह भी पता चलता है कि बिहार से गए बिहारी मुसलमानों के साथ बांग्लादेश में बदसुलूकी की जाती है। लेखक इन तथ्यों का बेबाकी से यथार्थपरक इस्तेमाल करता है जिससे कई तथ्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होता है। लेखक इस उपन्यास में अवलोकन बिंदु के रूप में प्रथम पुरुष 'मैं' का इस्तेमाल करता है। अतः कहा जा सकता है कि लेखक द्वारा इस उपन्यास में जिस विजन की अभिव्यक्ति की गई है वह सशक्त एवं उम्दा है। तकनीक मझा हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि 'छाको की वापसी' में बेहतरीन तकनीकों के इस्तेमाल ने उसे कालजयी बना दिया है।

- **इब्राहीम शरीफ़**

'सामानांतर कहानी' आन्दोलन के वास्तविक संस्थापक इब्राहीम शरीफ़ अपने जीवन के बहुत कम वर्ष ही साहित्य साधना को दे सके, चूँकि उनका शरीर समय से पहले ही काल के गाल में समा गया। इसके बावजूद उन्होंने अपने जीवन के अल्पकाल में ही हिंदी साहित्य को एक उपन्यास 'अंधेर के साथ' तथा लगभग तीस कहानियाँ दी। इसमें कोई शक नहीं कि इब्राहीम शरीफ़ अपने समय के प्रमुख हस्ताक्षर थे परन्तु हिंदी साहित्य में उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें वह सम्मान प्राप्त नहीं हो सका जिसके वे हक़दार थे। बहरहाल इब्राहीम शरीफ़ आज भी अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों के बीच मौजूद हैं। उनकी लिखी कहानियों एवं उपन्यासों का संकलन हो चुका है और संभवतः उनकी तमाम कहानियाँ प्रकाशित भी बहुत जल्द हो जाएंगी। उनकी जो भी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं उन सभी की कथावस्तु मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय जीवन से लिया गया है। इब्राहीम शरीफ़ की रचनाएँ निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और संघर्षों का जीवंत बखान है जिसे आप भोगा हुआ यथार्थ भी कह सकते हैं। यह विख्यात तथ्य है कि

हमारे ज्यादातर लेखक इसी मध्यवर्ग से आते हैं, इन्हीं में पलते बढ़ते हैं। इसी में इसका मनोविज्ञान निर्मित होता है। इसलिए उनके रचनात्मक संसार में इसी मध्यवर्गीय त्रासदी की वास्तविकताएं और रूप निरंतर आकार लेते हैं। इब्राहीम के उपन्यास में उनके अनुभव भी और उनका खौलता हुआ यथार्थ भी हमें गुंथा-बिंधा मिलता है। इब्राहीम शरीफ़ अपने लेखन में जिन्दगी के आसपास की वास्तविकताओं, जटिलताओं का चयन करतें हैं और उसे ही अपने उपन्यास की आधारभूमि बनाते हैं। इब्राहीम शरीफ़ अपने उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग के संघर्ष को, घुटन को और छोटी-छोटी मजबूरियों को, चिंताओं को अभिव्यक्त करते है। घरेलू परेशानियाँ, आर्थिक हालत और सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का बेबाक चित्रण इनमें हुआ है। इब्राहीम शरीफ़ के उपन्यास 'अँधेरे के साथ' की खास विशेषता यह है कि पूरी तरह से सामान्य मनुष्य की कथा कहते हुए नज़र आते हैं। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की तरह वे अपने उपन्यास में धार्मिक तीज-त्योहारों का सहारा नहीं लेते हैं। इस दृष्टिकोण से देखें तो इब्राहीम शरीफ़ का तकनीक बिल्कुल अलग दिखाई पड़ता है। उनकी इस तकनीक को मधुरेश जी की टिप्पणी से समझा जा सकता है- "इब्राहीम शरीफ़ मुस्लिम परिवार के परिवेशगत ब्यौरों को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हैं। शानी के 'काला जल' के मुस्लिम समाज की सड़ायँध या ताजिया और फातिहा जैसे धार्मिक रीति-रिवाजों एवं कर्मकांडों का जैसा सघन चित्र मिलता है, यहाँ वैसा कुछ नहीं है। उनका जोर एक लेखक के रूप में, मुस्लिम परिवेश का प्रमाणिक अंकन नहीं बल्कि इस धार्मिक विभाजन से बचकर एक साझा-कंपोजिट समाज की परिकल्पना में निहित है। परिवार का मुस्लिम होना भी यहाँ बहुत देर से खुलता है और वह भी सिर्फ उतना ही जितने से जरूरी होने के नाते बचा नहीं जा सकता। वे पात्रों के नामों का उल्लेख नहीं करते, अब्बा-अम्मी जैसे संबोधन का प्रयोग न करके वे माँ-पिता और बहन जैसे संबोधनों का प्रयोग करते हैं।"[18]

इब्राहीम शरीफ़ ने अपने उपन्यास 'अंधरे के साथ' में अवलोकन बिंदु के रूप में प्रथम पुरुष "मैं" का ही उपयोग किया है जिसमें कथाकार 'मैं' के रूप में पूरी कथा को पाठक के समक्ष

प्रस्तुत करता है। उपन्यास में फेंटेसी का भी सहारा लिया गया है, कथानक अपने आपको असहाय रूप में पाकर अपने दुश्मनों से बदला लेने के लिए समुद्र के किनारे रेत पर उन सभी का नाम लिखकर उसपर प्रहार करता है और अपने दिल को सुकून पहुँचाता है। शरीफ़ ने उपन्यास में प्रतीक का भी सुन्दर इस्तेमाल किया है जिसमें समुद्र शोषकों का प्रतीक है जो जितना खाता है उतना ही और भूखा होता जाता है। लेखक समुद्र के माध्यम से यह कहना चाहता है कि शोषक वर्ग निर्धनों का खून चूस-चूस कर भी भूखा रहता है, उसका अत्याचार ख़तम नहीं होता है। स्पष्ट है इब्राहीम शरीफ़ अपने उपन्यास में अलग तरह के प्रयोग से आम आदमी की समस्या को पूरी ईमानदारी से यथार्थपरक ही प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानी में उनका अनुभव साफ झलकता है।

### ➢ मेहरुन्निसा परवेज़

मेहरुन्निसा परवेज़ बेहद संवेदनशील लेखिका हैं, उनके उपन्यासों में वह झलकती भी है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारीमन की पीड़ा को निजी अनुभव के रंग में रंगकर व्यक्त किया है। उनके कथासाहित्य में कथ्य की प्रामाणिकता और भोगे हुए यथार्थ को सहज ही देखा जा सकता है। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुत दुखी थी जिसका प्रभाव उनके साहित्य पर भी दिखता है। अपनी शादी के दस वर्ष बाद तक भी वह माँ नहीं बन सकी थी। भारतीय समाज में बाँझपन की समस्या से पीड़ित महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय होती है। उसकी पीड़ा को केवल वही बता सकती है, क्योंकि केवल कल्पना के सहारे कोई भी उस पीड़ा को उस तरह से महसूस नहीं कर सकता है जिस तरह कोई पीड़ित समझ सकती है। 'आँखों की दहलीज' उपन्यास में इस पीड़ा को महसूस किया जा सकता है। उपन्यास के पात्र तालिया ऐसी ही एक अभागिन औरत है जो संतान की सुख से वंचित है। लेखिका तालिया के माध्यम से स्वयं के दर्द को ही बयां की है। बकौल मेहरुन्निसा परवेज़ -"तालिया का दुःख जो देख लेता, वह जो भोग रही है, यह मेरा दुःख है, क्योंकि उन दिनों मेरा मन भी बाँझ औरतों की लिस्ट में था। मैंने उस दुःख को अक्षरों का लिबास उढ़ा (ओढ़ा) दिया। मेरी भी शादी के दस वर्ष बीत गए थे और मैं माँ न बन पायी थी। कसूर चाहे

जिसका भी रहा हो, कलंक तो औरत के ही माथे पर होता है ना, दुःख भी वही झेलती है, सहती है।"[19] स्पष्ट है लेखिका निजी अनुभव को ही उपन्यास में व्यक्त की है।

मेहरुन्निसा परवेज़ के उपन्यास 'आँखों की दहलीज' पुरानी तकनीकों के सहारे लिखी गयी है जो एक प्रकार से किस्सागो की श्रेणी में आता है। उन्होंने इस उपन्यास में वर्णनात्मक शैली को अपनाया है। यहाँ कथानक लेखिका स्वयं हैं लेकिन वह उपन्यास का कोई पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं है। वह कथा के बाहर से अपने पात्रों को संचालित कर रही होती हैं। परन्तु इस बात का ख्याल अवश्य रखती हैं कि पात्रों का सहज विकास हो सके। जैसे तालिया, शशि, जावेद, जमीला ये सभी पात्र स्वतंत्र हैं और उनका सहज प्रयोग हुआ है। अवलोकन बिंदु की बात करें तो यहाँ पूरे उपन्यास की कथा लेखिका द्वारा ही कही जाती है। इस दृष्टि से उन्हें ही अवलोकन बिंदु माना जा सकता है। मेहरुन्निसा परवेज़ अपने कथा साहित्य की रचना प्रक्रिया में अवलोकन या ओब्जर्वेशन के तरीकों के बारे में कहती हैं- "मैं तो जो भी लिखती हूँ वो देखकर ही लिखती हूँ। पहले पात्रों का अध्ययन करती हूँ फिर लिखती हूँ यह कला मुझे पिता से मिली हुई है। मैंने उन्हीं पात्रों पर लिखा है जिन्हें आस-पास देखा है, महसूस किया है, उनके दुःख-सुख को समझा है।"[20] लेखिका ने उपन्यास में रोमांटिक दृश्यों का सुन्दर इस्तेमाल किया है। कई बार इन दृश्यों को देखकर यह भी महसूस होता है कि लेखक अपने विजन से भटक गया है। परन्तु वह सही समय पर फिर से अपने मुख्य उद्देश्य की तरफ लौट आती हैं। और ये जो रोमांटिक दृश्य होते हैं वो अचानक से गंभीरता में बदल जाता है। भले ही लेखिका ने उपन्यास में पुरानी तकनीकों का इस्तेमाल किया है लेकिन उनके उपन्यास की खास विशेषता यह रही है कि उनके वहां संवेदना, अनुभूति और कल्पना के संयोग से वैचारिकता को प्रधानता दी गयी है। इस प्रकार देखते हैं कि मेहरुन्निसा परवेज़ की कला-कौशल कलात्मक एवं संवेदात्मक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के उपन्यासों में भाषा एवं शिल्प का कलात्मक एवं रचनात्मक प्रयोग हुआ है। भाषा का ऐसा समिश्रण प्रयोग

हुआ है कि उपन्यासों में जीवन्तता उत्पन्न हो गयी है। खड़ी बोली से लेकर भोजपुरी, मगही, उर्दू-फारसी, अरबी, अंग्रेजी एवं आँचलिक भाषाओं एवं बोलियों को लेखकों ने आवश्यकतानुसार सुन्दर इस्तेमाल किया है। राही मासूम रज़ा, शानी, बदीउज्जमाँ, इब्राहीम शरीफ़ ने आधुनिक उपन्यास-कला का प्रयोग किया तो वहीं मेहरुन्निसा परवेज़ ने पारम्परिक तकनीकों के सहारे ही कथा की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। इन सारे रचनाकारों ने अपने स्तर पर अलग-अलग ढंग से रचना का सृजन किया है। राही ने उर्दू मिश्रित भोजपुरी के इस्तेमाल से 'आधागाँव' को उत्कृष्ट रचना बना दिया है। शानी ने अपनी आत्मकथात्मक शैली और पूर्वदीप्ती शैली का इस्तेमाल करके 'काला जल' को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया है, जिस पर देश-विदेश में बहुत शोध-कार्य संपन्न हो चुके हैं तथा आज भी हो रहे हैं। बदीउज़्ज़माँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' में मगही भाषा का एवं पत्रों का सुन्दर उपयोग हुआ है।

**संदर्भ सूची:**


1. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-177
2. वही, पृष्ठ-177
3. वही, पृष्ठ-177
4. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान, पृष्ठ-16
5. वही, पृष्ठ-17
6. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-180
7. (सं) शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश भाग-4, पृष्ठ-2245
8. इब्राहीम शरीफ़, अँधेरे के साथ, पृष्ठ-16
9. शानी, काला जल, पृष्ठ-244
10. वही, पृष्ठ-292
11. वही, पृष्ठ-281
12. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-14
13. (सं) शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश भाग-1, पृष्ठ-384
14. नामदेव, भारतीय मुसलमान, पृष्ठ-187
15. (सं) शंभुनाथ, हिंदी साहित्य ज्ञानकोश भाग-3, पृष्ठ-1547
16. शानी, काला जल, पृष्ठ-15
17. राही मासूम रज़ा, आधा गाँव, पृष्ठ-11, 12
18. (सं) किशन कालजयी, संवेद (पत्रिका), पृष्ठ-37
19. (सं) भीष्म साहनी, आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृष्ठ-421
20. डॉ. दिनेश पाल, मेहरुन्निसा परवेज़ का कथा साहित्य, पृष्ठ-219